कृषक प्रशिक्षण पुस्तिका

जैविक खेती

(धारणा, परिदृश्य, सिद्धांत एवं प्रबंधन)

राष्ट्रीय जैविक खेती केन्द्र

कृषि एवं सहकारिता विभाग
कृषि मंत्रालय, भारत सरकार
सेक्टर 19, हापुड़ रोड, कमला नेहरू नगर
गाजियाबाद – 201002 उत्तर प्रदेश

प्रकाशक

राष्ट्रीय जैविक खेती केन्द्र
हापुड़ रोड, कमला नेहरू नगर
गाजियाबाद–201 002
फोन : 0120–2764212, 2764906; फैक्स : 01020–2764901
ईमेल : nbdc@nic.in
वेबसाइट : http://ncof.dacnet.nic.in; http://pgsindia-ncof.gov.in

मार्गदर्शन

डॉ. कृष्ण चन्द्र
टी.के. घोष

संकलन

डा. ए.के. शुक्ला
डा. वी प्रवीन कुमार
डॉ. शाहिना तबस्सुम
डा. रश्मि सिंह

प्रकाशन वर्ष : 2017

क्षेत्रीय कार्यालय :

क्षेत्रीय जैविक खेती केन्द्र, गाजियाबाद (एचक्यू)
क्षेत्रीय जैविक खेती केन्द्र, बैंगलूरू
क्षेत्रीय जैविक खेती केन्द्र, भुवनेश्वर
क्षेत्रीय जैविक खेती केन्द्र, इंफाल
क्षेत्रीय जैविक खेती केन्द्र, जबलपुर
क्षेत्रीय जैविक खेती केन्द्र, नागपुर
क्षेत्रीय जैविक खेती केन्द्र, पंचकुला
क्षेत्रीय जैविक खेती केन्द्र, पटना

प्रकाशन एवं प्रक्रमण टीम :

श्री हरि भजन
सुभाष चन्द्र

———————————————————————————

मुद्रण :
राष्ट्रीय जैविक खेती केन्द्र, हापुड़ रोड, कमला नेहरू नगर, गाजियाबाद–201 002

अनुसूची

पाठ क्र.	पाठ विवरण	पृष्ठ सं.
१.	जैविक खेती धारणा एवं परिदृश्य	1
	परिचय	1
	जैविक खेती अवधारणा	1
	जैविक खेती वैश्विक परिदृश्य	2
	भारत में जैविक खेती	5
२.	जैविक खेती के मूलभूत सिद्धांत	10
	स्वस्थता का सिध्दांत	10
	पर्यावरणीय सिध्दांत	10
	समता का सिध्दांत	11
	परिचर्या का सिध्दांत	11
३.	जैविक प्रबंधन - एक समन्वित मार्ग	13
	प्रबंधन सिध्दांत	13
	महत्वपूर्ण बिन्दू	14
	जैविक फार्म का विकास	15
	मृदा का जैविक रूपान्तरण	17
	न्यून आदान विकल्प	17
	अधिक आदान विकल्प	18
	बहु फसल प्रणाली एवं फसल चक्र	18
	फसल चक्र	19
	समृध्द तथा जीवंत मृदा की अवस्था	20
	बीज/रोपणी सामग्री का उपचार	20
	बीजामृत तैयार करना	21
	खाद तथा मृदा समृध्दिकरण	21
	जैव उर्वरकों एवं जीवाणु कल्चर का उपयोग	22
	मृदा को समृध्द बनाये रखने के कुछ महत्पूर्ण उपाय एवं सूत्र	22
	संजीवक	23
	जीवामृत	23
	अमृत पानी	23
	पंचगव्य	23
	तापमान प्रबंधन	23
	समस्त जिवित अवयवों की सुरक्षा	24
	नाशीजीव प्रबंधन	24
	जुताई विकल्प	24
	यांत्रिक विकल्प	24
	जैविक विकल्प	24
	जैविक नाशीजीव नाशको का प्रयोग	25
	विषाणु जैव कीटनाशक	25
	वानस्पतिक कीटनाशक	25
	नीम	25
	कुछ अन्य नाशी जीव प्रबंधन सूत्र	25
	गौ-मूत्र	26

	सड़ा हुआ छाछ पानी	26
	दश पर्णी सत	26
	नीम गौमूत्र सत	26
	मिश्रित पत्तों का सत	26
	मिर्च अदरक का सत	26
	प्रभावी कीटनाशी सूत्र क्र.१	27
	प्रभावी कीटनाशी सूत्र क्र.२	27
४.	जैविक प्रबंधन के कुछ अन्य प्रचलित तरीके एवं नवीन जैविक आदान	28
	बायोडायनेमिक कृषि	28
	ऋषी कृषि	32
	पंचगव्य कृषि	33
	प्राकृतिक खेती	34
	नैटुको खेती	34
	होमा खेती	40
	जैविक खेती में ई.एम	42
५.	जैविक खेती मिट्टी व पर्यावरण सुरक्षा के साथ-साथ अधिक उत्पादन भी देती है।	47
	२१ वर्षीय डी.ओ.के. परीक्षण के परिणाम	47
	रोडेल संस्थान का २१ वर्षीय परीक्षण	48
	भारत में इक्रीसेट द्वारा किए गए सात वर्षीय दीर्घ प्रक्षेत्र परीक्षण	49
	जैविक खेती की नेटवर्क परियोजना (आई.सी.ए.आर) द्वारा चार वर्षीय अध्ययन	50
६.	पारंपरिक एवं जैविक खेती में खाद्य गुणवत्ता और खाद्य सुरक्षा की तुलना परिचय	53
	खाद्यों में बढ़ते कीटनाशी व रसायन अंश	53
	क्या जैविक उत्पादों का स्वाद अच्छा होता है?	53
	भौतिक रूप देखने पर क्या जैविक फल एवं सब्जियां अच्छी दिखती है?	54
	क्या जैविक खेती से खाद्यों में विष और जीवाणु संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है?	54
	क्या जैविक उत्पाद अधिक पुष्टिकारक होते है?	54
	जैविक खेती में कवक विषाणुओं एवं पादप टॉक्सिन का खतरा	55
७.	जैविक प्रमाणीकरण	56
	जैविक प्रमाणीकरण परिचय	56
	प्रमाणीकरण की आवश्यकता	56
	प्रमाणीकरण प्रक्रिया	56
	भारत में प्रमाणीकरण तंत्र	58
	जैविक कृषि के राष्ट्रीय मानक	58
	उत्पादक समूह प्रमाणीकरण प्रणाली	63
	पूर्ण प्रमाणीकरण प्रक्रिया संक्षेप में	65

जैविक खेती
(धारणा एवं परिदृश्य)

परिचय

पृथ्वी, मानव व पर्यावरण के बीच मधुर, परस्पर लाभदायी तथा दीर्घायु संबंधों की अवधारणा को आधार बनाकर आज की जैविक खेती की परिकल्पना की गई समय के बदलते रूवरूप के साथ जैविक खेती अपने प्रारंभिक काल के मुकाबले अब और अधिक जटिल हो गई है और अनेक नये आयाम अब इसके अंग है। जैविक खेती का नीति निर्धारण प्रक्रिया में प्रवेश तथा अर्न्तराष्ट्रीय बाजार में उत्कृष्ट उत्पाद के रूप में पहचान इसकी बढ़ती महत्ता का प्रतीक है । विगत दो दशकों में विश्व समुदाय में खाद्य गुणवत्ता सुनिश्चित करने के साथ-साथ पर्यावरण को स्वस्थ रखने हेतु भी जागरूकता बढ़ी है । अनेक किसानों व संस्थाओं ने इस विधा को भी समान रूप से उत्पादन क्षम पाया है। जैविक खेती प्रणेताओं का तो पूरा विश्वास है कि इस विधा से न केवल स्वस्थ वातावरण, उपयुक्त उत्पादकता तथा प्रदूषणमुक्त खाद्य प्राप्त होगा बल्कि इसके द्वारा संपूर्ण ग्रामीण विकास की एक नई, स्वपोषित, स्वावलंबी प्रक्रिया शुरू होगी। शुरूआती हिचकिचाहट के बाद जैविक खेती अब विकास की मुख्य धारा से जुड़ रही है और भविष्य में आर्थिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय सुरक्षा के नये आयाम सुनिश्चित कर रही है। हालॉकि प्रारंभिक काल से अब तक जैविक खेती के अनेक रूप प्रचलित हुए है परन्तु आधुनिक जैविक खेती अपने मूल रूप से बिल्कुल अलग है। स्वस्थ मानव, स्वस्थ मृदा तथा स्वस्थ खाद्य के साथ स्वस्थ व टिकाऊ वातावरण के प्रति संवेदनशीलता आज इसके प्रमुख बिन्दु है।

जैविक खेती अवधारणा -

विश्व को जैविक खेती भारत देश की देन है। जब भी जैविक खेती का इतिहास टटोला जायेगा भारत व चीन इसके मूल में होंगे। इन दोनों देशों की कृषि परम्परा 4000 वर्ष पुरानी है तथा यहां के किसान चार सहस्त्राब्दि के कृषि ज्ञान से परिपूर्ण किसान है और जैविक खेती ही उन्हे इतने वर्षो तक पालती पोसती रही है। जैविक खेती प्रमुखतया निम्न सिध्दांतों पर आधारित है।

- ❖ जैविक खेती चूंकि अधिकाधिक बाह्य उपादानों के उपायोग पर आश्रित नहीं है और इसके पोषण के लिये जल की अनावश्यक मात्रा भी वांछित नहीं है इस कारण यह प्रकृति के सबसे नजदीक है और प्रकृति ही इसका आदर्श है।
- ❖ पूरी विधा प्राकृतिक प्रक्रियाओं के सामंजस्य व उनके एक दूसरे पर प्रभाव की जानकारी पर आधारित होने के कारण इससे न तो मृदा जनित तत्वों का दोहन होता है और न ही मृदा की उर्वरता का ह्रास होता है।
- ❖ पूरी प्रक्रिया में मिट्टी एक जीवंत अंश है।
- ❖ मृदा में रहने वाले सभी जीव रूप इसकी उर्वरता के प्रमुख अंग है और सतत उर्वरता संरक्षण में योगदान करते है। अतः इनकी सुरक्षा व पोषण किसी भी कीमत पर आवश्यक है।
- ❖ पूरी प्रक्रिया में मृदा पर्यावरण संरक्षण सबसे महत्वपूर्ण है।

आज की परिभाषा में जैविक खेती कृषि की वह विधा है जिसमें मृदा को स्वस्थ व जीवंत रखते हुए केवल जैव अवशिष्ट, जैविक तथा जीवाणु खाद के प्रयोग से प्रकृति के साथ समन्वय रख कर टिकाऊ फसल उत्पादन किया जाता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि विभाग की परिभाषा के अनुसार जैविक खेती एक ऐसी प्रणाली है, जिसमें सभी संश्लेषित आदानों (जैसे रासायनिक खाद, कीटनाशी, हारमोन्स इत्यादि) के प्रयोग को नकारते हुए केवल फसल चक्र, फसल अवशिष्ट, अन्य जैविक आदान, खनिज आदान तथा जीवाणु खादों के प्रयोग से फसल उत्पादन किया जाता है।

विश्व खाद्य संगठन की एक अन्य परिभाषा के अनुसार जैविक खेती एक ऐसी अनूठी कृषि प्रबंधन प्रक्रिया है जो कृषि वातावरण का स्वास्थ्य, जैव विविधता, जैविक चक्र तथा मिट्टी की जैविक प्रणालियों का संरक्षण व पोषण करते हुए उत्पादन सुनिश्चित करती है। इस प्रक्रिया में किसी भी प्रकार के संश्लेषित तथा रासायनिक आदानों के उपयोग के लिये कोई स्थान नहीं है।

दार्शनिक परिभाषा के अनुसार जैविक खेती का अर्थ प्रकृति के साथ जुड़कर खेती करना है। इस प्रक्रिया में सभी अवयव व प्रणालियॉं एक दूसरे से जुड़ी है। चूँकि जैविक खेती का अर्थ है सभी अंगों के बीच आदर्श, समन्वित संबंध, अतः हमें मिट्टी, जल, जीव, पौधे, जैविक चक्र पशु व मानव तथा उनके आपसी संबंधों की गहन जानकारी होनी चाहिये । इन समस्त संबंधों तथा सबका सम्मिलित सहयोग जैविक खेती का मूल आधार है।

जैविक खेती वैश्विक परिदृश्य -

न्यूरेमबर्ग में बायोफाख 2010 में प्रकाशित हुई जानकारी के आधार पर जैविक खेती द्रुत गति से बढ़ रही है तथा विश्व के 154 देशों की सांख्यिकी जानकारी उपलब्ध है। अनेक देशों में जैविक खेती के अंर्तगत भूमि का लगातार विस्तार हो रहा है प्रमाणीकृत जैविक खेती को आधार बनाकर किये गये वर्तमान वैश्विक सर्वेक्षण का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है -

प्रमाणीकृत खेती वाले क्षेत्र :-

* 1.4 करोड़ जैविक उत्पादकों द्वारा लगभग 3.5 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र में जैविक प्रबंधन द्वारा खेती की जा रही है।
* विश्व में सर्वाधिक जैविक प्रबंधन वाले कृषि क्षेत्र ओसेनिया (1.21 करोड़ हेक्टेयर) यूरोप (0.82 करोड़ हेक्टेयर) एवं लेटिन अमेरिका (0.82 करोड़ हेक्टेयर) महाद्वीपों में हैं। आस्ट्रेलिया, अर्जेन्टीना एवं चीन विश्व में सर्वाधिक जैविक खेती वाले देश हैं।
* कुल कृषि क्षेत्र के सापेक्ष जैविक प्रबंधन के अंर्तगत सर्वाधिक भूमि फाक्लैण्ड द्वीप, (36.9 प्रतिशत), लिचटैन्स्टीन (29.8 प्रतिशत) एवं आस्ट्रिया (15.9 प्रतिशत) देशों में है।
* सर्वाधिक जैविक उत्पादकों के मामले में प्रमुख हैं भारत (5,97,000), यूगाण्डा (1,80,000 उत्पादक) तथा मैक्सिको (1,30,000)। पूरे विश्व के कुल जैविक उत्पादकों में से एक तिहाई से ज्यादा जैविक किसान अफ्रीका महाद्वीप में हैं।
* वर्ष 2007 के मुकाबले इस वर्ष लगभग 30 लाख हैक्टेयर अतिरिक्त भूमि जैविक प्रबंधन के अधीन लाई गई है। पूर्व वर्ष के मुकाबले यह वृद्धि 9 प्रतिशत रही।

* अर्जेन्टीना में सुदृढ़ विकास से अकेले लैटिन अमेरिका महाद्वीप में जैविक खेती क्षेत्र में 26% की दर से विकास आंका गया है। यूरोप में लगभग 5 लाख हैक्टेयर तथा एशिया में लगभग 4 लाख हैक्टेयर क्षेत्र को जैविक कृषि के अंर्तगत लाया गया है।
* विश्व के एक तिहाई (12 मिलियन हेक्टेयर) भाग विकसित देशों में है, तथा लैटिन अमेरिका सर्वाधिक क्षेत्र के साथ प्रथम स्थान पर है, एशिया एवं अफ्रीका क्रमशः दूसरे व तीसरे स्थान पर है। अर्जेटीना, ब्राजील व चीन सर्वाधिक जैविक कृषि क्षेत्र वाले देश हैं।
* 3.1 करोड़ हेक्टेयर जैविक भूमि क्षेत्र वनीय उत्पाद संग्रहण एवं प्राकृतिक मधुमक्खी पालन हेतु प्रयोग किया जा रहा है जिसका अधिकांश भाग विकसित देशों में है। कृषि योग्य जैविक खेती क्षेत्र का दो तिहाई हिस्सा विकसित देशों में है। अन्य जैविक क्षेत्रों में एक्वाकल्चर (मछलीपालन आदि) क्षेत्र (4.3 लाख हैक्टेयर), जंगल (10 हजार हेक्टेयर) तथा गैर कृषि चारागाह क्षेत्र (3.2 लाख हैक्टेयर) प्रमुख हैं।

  लगभग दो तिहाई जैविक कृषि भूमि (2.2 करोड़ हैक्टेयर) में घास (चारे हेतु) उगाई जा रही है। 82 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में विभिन्न फसलें व बागवानी पौधे लगाये जा रहे हैं। फसलोत्पादन क्षेत्र कुल जैविक प्रबंधन क्षेत्र का लगभग एक चौथाई है।

विभिन्न महाद्वीपों में जैविक कृषि का विकास :-

(1) **अफ्रीका** - अफ्रीका में लगभग 9 लाख हेक्टेयर भूमि जैविक प्रमाणीकरण के अधीन है। यह पूरे विश्व की जैविक कृषि भूमि का लगभग 2.5 प्रतिशत है। लगभग चार लाख सत्तर हजार किसान जैविक खेती कर रहे हैं। अफ्रीका के जिन देशों में जहां सर्वाधिक जैविक भूमि है उनमें प्रमुख हैं युगाण्डा (2,12,304 हेक्टेयर), टयूनिशिया (1,74,725 हेक्टेयर) एव इथोपिया (99,944 हेक्टेयर)।

(2) **एशिया** - पूरे एशिया में लगभग 3.3 मि. हेक्टेयर जैविक कृषि भूमि है। यह हिस्सा पूरे विश्व की जैविक कृषि भूमि का नौ प्रतिशत है। लगभग 6.5 लाख उत्पादक किसान जैविक खेती से जुड़े हैं। एशिया के सर्वाधिक जैविक खेती वाले देशों में चीन (19 लाख हेक्टेयर) एवं भारत (10 लाख हेक्टेयर) प्रमुख हैं। कुल कृषि क्षेत्रफल का अधिकतम क्षेत्र तिमोर लेस्टे देश में है। जो कि कुल भूमि का सात प्रतिशत है। जहॉ भारत एवं चीन में वनीय जैविक क्षेत्र की प्रमुख भूमिका है। वहीं चीन, बांग्लादेश एवं थाईलैंड में एक्वाकल्चर (मछली पालन आदि) प्रमुख जैविक कृषि व्यवसाय हैं।

(3) **यूरोप** - वर्ष 2008 तक पूरे यूरोप में 82 लाख हेक्टेयर भूमि जैविक कृषि प्रबंधन के अधीन थी तथा 2 लाख 20 हजार उत्पादक जैविक कृषि से जुड़े हैं। इसमें यूरोपियन संघ के देशों का हिस्सा लगभग 75 लाख है (2 लाख फार्म) है। पूरे यूरोप का लगभग 1.7% कृषि क्षेत्र तथा यूरोपियन संघ का लगभग 4.3% कृषि क्षेत्र जैविक प्रबंधन के अधीन है। पूरे विश्व के कुल जैविक कृषि क्षेत्र का लगभग 23 प्रतिशत भाग यूरोप में है।

(4) **लेटिन अमेरिका** - 2008 के आंकडों के अनुसार लेटिन अमेरिका में 81 लाख हेक्टेयर भूमि एवं 2 लाख 60 हजार उत्पादक जैविक कृषि के अधीन हैं। यह पूरे विश्व के जैविक कृषि क्षेत्र का 23% है। इस महाद्वीप में अधिकतम जैविक भूमि वाले देश हैं अर्जेन्टीना (40 लाख हेक्टेयर) ब्राजील (18 लाख हेक्टेयर) एवं ऊरूग्वे (9 .30 लाख हेक्टेयर)।

(5) **उत्तरी अमेरिका** - उत्तरी अमेरिका में 26 लाख हेक्टेयर भूमि जैविक प्रबंधन के अन्तर्गत है, यह क्षेत्र विश्व के कुल जैविक कृषि क्षेत्रफल का 0.6 प्रतिशत है। जैविक खेती का अधिकांश भाग संयुक्त राष्ट्र अमेरिका (18 लाख हेक्टेयर वर्ष 2008 के आंकडों के अनुसार) में है। विश्व की कुल खेती वाली जैविक भूमि का 7 प्रतिशत भाग उत्तरी अमेरिका में है। जैविक व्यापार संघ के वर्ष 2009 के आंकड़ों के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका में आर्थिक मंदी के चलते भी वर्ष 2008 में जैविक खाद्यों की बिक्री का कुल मूल्य 24.6 बिलियन डालर रहा जो कि वर्ष 2007 के मुकाबले 17.1% अधिक था।

(6) **ओसेनिया** - इस क्षेत्र में आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड एवं द्वीपीय प्रदेश जैसे फिजी, पापुआ न्यू गुइनीय, टोंगा एवं वानुआटू सम्मिलित है। इस क्षेत्र में 7749 उत्पादक है जो कि 1.21 करोड़ हेक्टैयर भूमि पर जैविक उत्पादन ले रहे है। यह पूरे महाद्वीप के कुल कृषि क्षेत्रफल का 2.8 प्रतिशत है तथा पूरे विश्व की जैविक खेती का 35 प्रतिशत है। आस्ट्रेलिया महाद्वीप के कुल जैविक कृषि क्षेत्र का 99 प्रतिशत भाग 1.2 करोड हेक्टेयर आस्ट्रेलिया में हैं जिसका 97 प्रति प्रतिशत भाग चारा भूमि है, इसी प्रकार न्यूजीलैंड में एक लाख हेक्टेयर एवं वानुआटू में 8996 हेक्टेयर भूमि जैविक है।

वैश्विक बाजार -

यूरोप स्थित आरगेनिक मॉनिटर के ऑकलन के अनुसार सन् 2008 में विश्व के जैविक उत्पादों का कुल बिक्री मूल्य लगभग 50.9 बिलियन डॉलर रहा जो सन् 2003 के ऑकडों से 25 बिलियन यू.एस. डॉलर अधिक है। उत्तरी अमेरिका एवं यूरोप में जैविक उत्पादों के सर्वाधिक उपभोक्ता है और इन्हीं क्षेत्रों में ही इनकी अधिकतम मांग भी है, पूरे विश्व की जैविक आय का 97 प्रतिशत राजस्व इन्हीं क्षेत्रों से प्राप्त होता है। एशिया, लेटिन अमेरिका एवं आस्ट्रेलिया मुख्य जैविक खाद्य उत्पादक एवं निर्यातक देश हैं। वैश्विक बाजार पर वित्तीय कमी का प्रतिकूल प्रभाव तो पड़ा है परंतु प्राथमिक शोध के आधार पर पाया गया कि 2009 में विपरीत आर्थिक परिस्थिति के बावजूद भी जैविक बाजार में बढ़ोत्तरी हुई।

मानक एवं नियंत्रण -

सन् 2009 के दौरान मानक एवं नियंत्रण के क्षेत्र में प्रमुख उपलब्धियां प्राप्त हुई। नवीनतम यूरोपियन संघ नियंत्रण एवं कैनेडियन जैविक मानक भी इसी समय तैयार हुये। इसके पश्चात् आस्ट्रेलियन आंतरिक जैविक मानकों को लागू किया गया। विश्व में पहली बार कनाडा एवं संयुक्त राष्ट्र अमेरिका द्वारा इसी अंतराल में जैविक नियंत्रण प्रणाली के तहत पारस्परिक अनुबंध किया गया एवं यूरोपियन संघ ने अपने संघ से बाहर प्रमाणीकरण संस्थाओं को अनुमोदित करने की प्रक्रिया निर्धारित की। इन उपलब्धियों से आशा की जाती है कि जैविक उत्पादों का सहजता से व्यापार हो सकेगा एवं जैविक कृषि आंदोलन को बल मिलेगा। जैविक मानकों को अपनाने एवं लागू करने वाले देशों की संख्या बढ़कर 73 हो गई है। 16 देशों द्वारा मानकों व प्रमाणीकरण प्रक्रिया का मसौदा तैयार किया जा रहा है तथा पूरी प्रक्रिया को विधि अंर्तगत लाने के प्रयास किये जा रहे हैं। सन् 2009 में आइफोम, विश्व खाद्य संगठन तथा अंकटाड द्वारा वैश्विक जैविक बाजार परियोजना (जी.ओ.एम.ए.) आरम्भ की गई। इस योजना का मुख्य उद्देश्य है विभिन्न जैविक प्रमाणीकरण प्रणालियों में समरूपता कर जैविक उत्पादों के विपणन में समानता व समन्वय करना। इसी समय में प्रमाणीकरण संस्थाओं की संख्या में भी वृद्धि हुई। 2008 में यह संख्या 481 से

बढ़कर 488 हो गई, इनमें से अधिकांश संस्थायें यूरोपियन संघ संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, जापान, दक्षिण कोरिया, चीन, कनाडा एवं ब्राजील में है। पूरे विश्व में सहभागिता प्रतिभूति प्रणाली (पी.जी. एस.) का भी विकास हो रहा है तथा जैविक उत्पाद लेने वाले उत्पादकों को पी.जी.एस. प्रमाणीकृत किया जा रहा है, पी.एस.जी. स्थानीय रूप से विश्वसनीय गुण नियंत्रण प्रणाली के नाम से प्रचलित है। पी.जी.एस. के अन्तर्गत पूरे विश्व में लगभग 10,000 लघु किसान इससे जुड़े हैं। पी.जी.एस. वाले प्रमुख देश पृथ्वी के दक्षिणी गोलार्ध में स्थित हैं।

जैविक खेती एवं विकास में सहायता -

विश्व के अनेक देशों में गत 25 वर्षो में निजी एवं शासकीय संस्थाओं द्वारा जैविक खेती एवं जैविक क्षेत्रों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया गया है। इन संस्थाओं द्वारा दिये गये योगदान में तकनीकी क्षमता विकास, राष्ट्रीय व अंर्तराष्ट्रीय बाजार निर्माण तथा स्थानीय मानकों व प्रमाणीकरण प्रक्रिया निर्धारण प्रमुख हैं। एफ.ए.ओ. की मेजबानी में जैविक अनुसंधान संधि को लागू करने हेतु भी एक प्रस्ताव रखा गया जिससे अंर्तराष्ट्रीय स्तर पर मौजूदा संस्थानों, शोध कार्य में लगे वैज्ञानिकों की एकजुटता को बल मिलेगा तथा साथ ही अंर्तराष्ट्रीय व्यापार की बढ़ोत्तरी से विकासील देशों में बढ़ रही गरीबी का उन्मूलन होगा। अंर्तराष्ट्रीय व्यापार केन्द्र (आई.टी.सी.) द्वारा चलाये जा रहे व्यापार, मौसम परिवर्तन तथा पर्यावरण संरक्षण कार्यक्रमों द्वारा भी जैविक क्षेत्र को बढ़ावा दिया जा रहा है। इसके अंर्तगत बाजार सूचना, मानकीकरण हेतु प्रशिक्षण, व्यापार प्रोत्साहन तथा अन्य उपाय जैसे नीतिगत मामलों में सहयोग तथा विपणन हेतु संपर्क इत्यादि प्रमुख हैं।

भारत में जैविक खेती -

जैविक खेती का प्रवेश - भारत में जैविक खेती विकास के तीन आयाम हैं और विभिन्न वर्ग के किसानों ने अलग-अलग कारणों से जैविक खेती को अपनाया है। इसमें पहला वर्ग वह है जो ऐसे क्षेत्रों में बसा है जहां परम्परागत तरीके से बिना किसी निवेश या बहुत कम निवेश के खेती की जाती है, (हो सकता है कि स्त्रोतो और उत्तम तकनीक की कमी के कारण ऐसी खेती करने के लिये वे बाध्य या विवश हो)। दूसरा वर्ग वह है जिन्होंने पारंम्परिक रसायन आधारित कृषि के प्रतिकूल प्रभावों के कारण (चाहे वह मृदा की घटती उर्वरा शक्ति हो, खेती में आने वाली अधिकतम लागत हो या लागत के बाद अनुमान के अनुसार प्रतिफल न मिल पाना हो) हाल ही में जैविक खेती को अपनाया। तीसरा वर्ग वह है जिन्होने इसके व्यवसायिक पहलू को समझाा तथा बढ़ती बाजार मांग तथा संभावित अधिक कीमत के कारण इसे अपनाया। अतः पहला वर्ग परम्परागत तरीके से खेती करने वाला है और अप्रमाणित है, दूसरे वर्ग में प्रमाणित एवं अप्रमाणित दोनों प्रकार के कृषक है एवं तीसरा वर्ग अधिकांशतः प्रमाणित है। यह तीसरा वर्ग जो व्यापारिक दृष्टिकोण रखते हुए संगठित रूप से जैविक खेती कर रहा है प्रमुख रूप से आकर्षण का केन्द्र है तथा आज प्रमाणीकृत जैविक खेती के जो भी ऑकड़े उपलब्ध हैं वे इसी वर्ग के किसानों से संबंधित है।

बढ़ता प्रमाणीकृत क्षेत्र - एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2003-04 में पूरे भारत में प्रमाणीकृत जैविक खेती के अन्तर्गत कुल फसलीय क्षेत्र लगभग 42,000 हजार हेक्टेयर था जो कि पिछले 6 वर्षो में 25 गुना बढ़कर मार्च 2010 में 10.85 लाख हैक्टेयर से अधिक हो चुका है। इसके अलावा लगभग 34 लाख हैक्टेयर वनीय क्षेत्र भी प्रमाणीकरण के अधीन है। कुल मिलाकर लगभग 44 लाख हैक्टेयर क्षेत्र जैविक प्रमाणीकरण के अधीन है। जैविक प्रबंधन के तहत वर्षवार बढ़ोत्तरी

को तालिका 1 में दर्शाया गया है। इसी प्रकार तालिका 2 में जैविक उत्पादन परियोजनाओं, प्रणाली, गुणवत्ता युक्त उत्पादन, निर्यातक मात्रा एवं निर्यातक मूल्य आदि का पूर्ण विवरण दर्शाया गया है। तालिका 3 में राज्यवार जैविक क्षेत्रों का विवरण एवं जैविक खेती कर रहे कुल कृषकों की संख्या को दर्शाया गया है। तालिका 4 में उत्पादित मुख्य जैविक उत्पादों की मात्रा दर्शायी गयी है।

नियामक तंत्र रचना - निर्यात, आयात व स्थानीय बाजार में जैविक उत्पादों की गुणवत्ता सुनिश्चित करने हेतु एक विश्वसनीय प्रमाणीकरण प्रक्रिया की स्थापना की गई है जिसे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर काफी सराहना मिली है। इसे राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम के नाम से जाना जाता है। यह कार्यक्रम विदेश व्यापार विकास एवं नियमन अधिनियम के तहत निर्यात आवश्यकता को नियंत्रित करने हेतु चलाया जा रहा है। इस अधिनियम के तहत राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम को यूरोपियन संघ एवं स्वीडन द्वारा समतुल्यता प्रदान की गई है। अमेरिका के कृषि विभाग द्वारा राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम की मूल्यांकन प्रणाली को अनुमोदित किया गया है। इसके कारण राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम के अधीन भारत की किसी भी अधिकृत प्रमाणीकरण संस्था के प्रमाणीकरण के आधार पर जैविक उत्पादों को पुनः प्रमाणीकरण की शर्त के बिना यूरोप, स्वीडन एवं संयुक्त राज्य अमेरिका को निर्यात किया जा सकता है। कृषि उत्पाद श्रेणी, चिन्हीकरण एवं प्रमाणीकरण अधिनियम (ए.पी.जी.एम.सी.) के अंतर्गत आयात एवं घरेलू बाजार हेतु राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम को अनुमोदित किया गया है। एपीडा संस्था वाणिज्य मंत्रालय के अंतर्गत एफ.टी.डी.आर. अधिनियम के तहत निर्यात हेतु राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम का नियंत्रण करती है एवं कृषि मंत्रालय के अंतर्गत ए.एम.ए. (कृषि वाणिज्य सलाहकार) द्वारा ए.पी.जी.एम.सी. अधिनियम के तहत अंतर्देशीय राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम संचालित किया जा रहा है। राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम के अंतर्गत राष्ट्रीय प्रत्यायन समिति द्वारा प्रमाणीकरण एवं निरीक्षण संस्थाओं का प्रत्यायन किया जाता है। वर्तमान में प्रमाणीकरण हेतु 20 प्रमाणीकरण संस्थाऐं अधिकृत की गई हैं। इनमें से 6 संस्थाऐं शासकीय एवं 14 संस्थाऐं निजी प्रबंधन के अन्तर्गत कार्यरत हैं ।

कृषकों एवं संचालकों की बढ़ती संख्या - प्रमाणीकरण प्रक्रिया के अधीन पंजीकृत 2099 संचालकों में से 427 खाद्य प्रसंस्कर्ता हैं, 753 व्यक्तिगत किसान हैं। लगभग 5.97 लाख छोटे व मझोले किसान 919 समूह रूप में पंजीकृत हैं। लघु व सीमांत किसानों की अधिकता के कारण विश्व के कुल जैविक उत्पादकों में से अकेले भारत में लगभग आधे उत्पादक हैं।

भारतीय जैविक कृषि की प्रमुख विशेषताऐं - पिछले कुछ वर्षों में हुई अभूतपूर्व प्रगति से जहॉ न केवल जैविक कृषि क्षेत्र में बढ़ोत्तरी हुई है बल्कि जैविक उत्पादों की मांग भी तेजी से बढ़ी है। विश्व के कुल जैविक फसलीय क्षेत्र एवं वनीय क्षेत्र में भारत का महत्वपूर्ण स्थान है। वर्ष 2008-09 में 77000 टन जैविक कपास उत्पादन के साथ भारत सर्वाधिक जैविक कपास उत्पादक देश बन गया है तथा कुल वैश्विक जैविक कपास उत्पादन में भारत का हिस्सा 50% है।

तालिका - 1 जैविक प्रबंधन के अंतर्गत उत्पादन क्षेत्र

क्र.	वर्ष	जैविक प्रबंधन के अंतर्गत क्षेत्र (हेक्टेयर)
1	2003-04	42,000
2	2004-05	76,000

3	2005-06	1,73,000
4	2006-07	5,38,000
5	2007-08	8,65,000
6	2008-09	12,07,000
7	2009-10	10,85,648

तालिका - 2 जैविक उत्पादन परियोजनाओं, प्रसंस्करणकर्ता, उत्पादन मात्रा, निर्यात मात्रा, एवं निर्यात मूल्य की संपूर्ण स्थिति (2009-10)

क्र.	अवयव	(मात्रा / मूल्य)
1.	जैविक प्रमाणीकरण प्रक्रिया के अंतर्गत क्षेत्र पूर्णतः जैविक परिवर्तन अधीन कुल	 757978.71 327669.749 1085648.4
2.	जैविक प्रमाणीकरण प्रक्रिया के अंतर्गत किसानों की संख्या पूर्णतः जैविक परिवर्तन अधीन कुल	 351297 246576 597873
3.	संचालकों की संख्या	2099
4.	प्रसंस्करणकर्ता की संख्या	427
5.	उत्पादक समूहों की संख्या	919
6.	निर्यातकों की संख्या	253
7.	कुल उत्पादन (करोड मे.ट.)	17.0
8.	कुल निर्यातित मात्रा (लाख मे.ट.)	6 .0
9.	निर्यात का मूल्य यू.एस.मिलियन डॉलर में	112.0
10.	निर्यात का मूल्य करोड रु में	537.6

तालिका - 3 जैविक प्रमाणीकरण के अंतर्गत कुल क्षेत्र एवं पंजीकृत किसानों की संख्या (2009-10)

स. क्र.	राज्य	कुल क्षेत्रफल हेक्टेयर			किसानों की कुल संख्या		
		जैविक	परिवर्तन अधीन	कुल	जैविक	परिवर्तन अधीन	कुल
1	आन्ध्रप्रदेश	10129.11	20838.12	30967.23	9046	22458	31504
2	अरूणाचल प्रदेश	523.17	1374.33	1897.5	116	590	706
3	आसाम	1598.18	3510.74	5108.92	479	2768	3247
4	बिहार	0	1096.3	1096.3	0	2111	2111
5	छत्तीसगढ़	332.06	112.241	444.301	3	116	119
6	दिल्ली	77.3	190.4	267.7	4	66	70
7	गोवा	5947.1	1443.67	7390.77	620	203	823
8	गुजरात	53596.95	16941.91	70538.86	19353	10213	29566
9	हरियाणा	3585.16	5387.59	8972.75	1794	3473	5267
10	हिमाचल प्रदेश	437.09	139.01	576.1	346	833	1179
11	जम्मू और कश्मीर	430.63	182.44	613.07	132	68	200
12	झारखंड	0	0	0	0	0	0
13	कर्नाटका	16099.06	35369.398	51468.458	6061	26163	32224
14	केरल	7352.67	7516.67	14869.34	6215	8857	15072
15	मणिपुर	1247.16	1924.15	3171.31	2066	2901	4967
16	महाराष्ट्र	105172.62	45295.12	150467.74	44551	21098	65649
17	मध्यप्रदेश	378572.26	61952.74	440525	151953	25072	177025
18	मिजोरम	18002.27	9857.55	27859.82	14177	13878	28055
19	मेघालय	1366.01	1677.1	3043.11	823	2685	3508
20	नागालैंड	3091.3	6554.39	9645.69	3459	15639	19098
21	उडीसा	79086.99	16653.92	95740.91	49523	12605	62128
22	पंजाब	379.84	4883.77	5263.61	85	2992	3077
23	राजस्थान	29969.93	11157.99	41127.92	10204	7603	17807
24	सिक्किम	2872.73	4521.49	7394.22	3130	4697	7827
25	त्रिपुरा	203.56	77.5	281.06	1	295	296
26	तमिलनाडू	3199.44	3543.44	6742.88	206	3465	3671
27	उत्तरप्रदेश	8665.35	44879.88	53545.23	5518	26458	31976
28	उत्तराखंड	16158.86	14906.75	31065.61	20695	26484	47179
29	पश्चिम बंगाल	9881.91	5681.14	15563.05	737	2785	3522
30	अन्य	0	0	0	0	0	0
	कुल	**757978.71**	**327669.749**	**1085648.4**	**351297**	**246576**	**597873**

तालिका - 4 जैविक व्यवस्था के अंतर्गत विभिन्न फसल उत्पादों की उत्पादित मात्रा (2009-10)

सं. क्र.	पदार्थ	मी.ट. में उत्पाद मात्रा		
		जैविक	परिवर्तन अधीन	कुल
1.	चावल	44335	32354	76690
2.	गेहूं	6892	15364	22560
3.	अन्य धान्य/बाजरा	67333	63985	131318
4.	दालें	17560	16785	34345
5.	तेल बीजे (सोयाबीन का)	163185	59647	222832
6.	कपास (कच्चे कपास बीज)	284832	86906	371740
7.	मसाले	17419	20084	37504
8.	चाय/कॉफी	16506	10838	27344
9.	फल एवं सब्जियां	194505	538073	732579
10.	औषधी/औषधीय पौधे	129543	58767	188310
11.	अन्य विविध फसलें	8001	25235	33236

तालिका - 5 जैविक व्यवस्था के अंतर्गत विभिन्न फसलों द्वारा घेरा गया अनुमानित क्षेत्रफल (वर्ष 2008-09)

सं. क्र.	पदार्थ	क्षेत्रफल हेक्टेयर में		
		जैविक	परिवर्तन अधीन	कुल
1.	धान	18134.00	9766.00	27900.00
2.	गेहूं	4056.00	7192.00	11248.00
3.	अन्य अनाज वाली फसलें/बाजरा	26184.00	37678.00	63862.00
4.	दालें	12023.00	17617.00	29640.00
5.	तेलीय फसलें (सोयाबीन का)	91849.00	87307.00	179156.00
6.	कपास	259699.00	93299.00	352998.00
7.	मसाले	6507.00	23291.00	29798.00
8.	चाय/कॉफी	12711.00	12465.00	25176.00
9.	फल एवं सब्जियां	128879.00	41176.00	170055.00
10.	औषधी/औषधीय पौधे	32313.00	10690.00	43003.00
11.	अन्य फसलें	27995.00	28306.00	56301.00
12.	फसलें जिनकी जानकारी उपलब्ध नहीं	19812.00	198110.00	217922.00
	कुल क्षेत्रफल	640162	566897	1207059

जैविक खेती के मूलभूत सिध्दांत

जैविक खेती विधा तथा उसके उद्देश्यों के पीछे निहित प्रेरणा की जानकारी तभी हो सकती है जब इसके अंतःकरण में स्थित मूलभूत सिध्दांतों को समझा जाये। स्वस्थ व उच्च गुणवत्ता के खाद्य, रेशे तथा अन्य उपज की लगातार प्राप्ति तथा पर्यावरण व मृदा उर्वरता का दीर्घकालीन स्थायित्व इस विधा के प्रमुख अंग है। समय के साथ जैविक खेती के सिध्दांतों में अनेक बदलाव हुए हैं जो जैविक आंदोलन की दिशा तय करते रहे है। आज के सिध्दांत खेती के लगभग हर उन सभी पहलुओं पर लागू होते हैं जिनके अंतर्गत धरती को जोता जाता है, जल प्रबंधन किया जाता है, पौधों व पशुओं का पोषण किया जाता है। तथा खाद्यान्न का उत्पादन व वितरण किया जाता है। इनमें मानव, धरती के सभी जीव स्वरूप तथा पर्यावरण का ध्यान रखते हुए आगामी पीढ़ियों के आपसी सम्बन्धों तथा प्रकृति प्रदत्त स्त्रोतों के उपयुक्त दोहन पर विशेष ध्यान दिया जाता है। आज के जैविक खेती सिध्दांत पूरे जैविक आंदोलन को उसकी पूरी विविधता के साथ आगे बढ़ने की प्रेरणा देते है। पूरी जैविक खेती इन्ही मूलभूत तत्वों से उत्पन्न व विकसित हुई है।

जैविक कृषि आंदोलन के अंर्तराष्ट्रीय संघ (IFOAM) की परिभाषा में जैविक कृषि के मूलभूत सिध्दांत निम्न प्रकार है :-

1. स्वस्थता का सिध्दांत
2. पर्यावरणीय सिध्दांत
3. समता का सिध्दांत तथा
4. परिचर्या का सिध्दांत

स्वस्थता का सिध्दांत -

जैविक खेती मिट्टी, पौधों, पशुओं, मानव तथा धरती के स्वास्थ्य को टिकाऊ व अक्षुण्ण रखते हुए सबको एक अविभाज्य इकाई के रूप में मान्यता देती है। मानव समुदाय के उत्कृष्ट स्वास्थ्य की परिकल्पना बिना स्वस्थ वातावरण के नहीं हो सकती। स्वस्थ मृदा ही स्वस्थ फसलों को जन्म देती है और स्वस्थ फसलों से पशुओं व मानव का स्वास्थ्य सुनिश्चित होता है। सभी जीव स्वरूपों के बीच संपूर्ण समन्वय ही संपूर्ण स्वास्थ्य की कुंजी है। व्याधियों से मुक्ति के साथ-साथ सभी की भौतिक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय स्वस्थता सबसे महत्वपूर्ण है। जैविक खेती के सभी स्वरूप जैसे फसल उत्पादन, खाद्य प्रसंस्करण, वितरण तथा उपयोग सभी छोटे से छोटे जीवों से लेकर मानव तक पर्यावरणीय स्वस्थता को सुदृढ़ता प्रदान करते है। चूंकि जैविक खेती का उद्देश्य उच्च गुणवत्ता के स्वस्थ भोज्य को सुनिश्चित करना है, अतः प्रक्रिया में किसी भी प्रकार के रसायन उपयोग के लिए कोई जगह नहीं है।

पर्यावरणीय सिध्दांत -

जैविक खेती जीवंत पर्यावरण, प्राकृतिक जीव चक्र व उनके बीच अक्षुण्ण समन्वय तथा सबके संधारण के सिध्दांत पर आधारित है। इस नियम के अनुसार संपूर्ण उत्पादन प्राकृतिक प्रक्रियाओं तथा प्राकृतिक स्त्रोतों के पुनः प्रयोग पर निर्भर है। प्रत्येक जीव स्वरूप का पालन पोषण उत्पादन प्रक्रिया के पर्यावरण के साथ सामंजस्य कर सुनिश्चित किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर अच्छे फसल उत्पादन के लिये जीवंत मृदा, पशुओं के लिये उचित आवास व वातावरण व उसके

सभी अंगों के बीच समन्वय अति आवश्यक है। जैविक खेत, चारागाह तथा जंगल क्षेत्र भी इस चक्र से जुड़कर प्रकृति के संतुलन में सहायक हो सकते है। सभी प्राकृतिक चक्र, स्थान विशेष के साथ अलग-अलग होकर भी मूल रूप में समान होते है जैविक प्रबंधन में स्थानीय परिस्थितियों तथा पर्यावरण का विशेष ध्यान रखते हुए प्रक्रियाएं तय की जाती है। पर्यावरण की गुणता को कायम रखते हुए प्राकृतिक स्त्रोतों का संरक्षण किया जाता है तथा स्थानीय स्त्रोतों के पुनः प्रयोग से बाह्य आदानों की आवश्यकता को घटाया जा सकता है और प्राकृतिक ऊर्जा स्त्रोतों के अधिकाधिक दोहन से ऊर्जा क्षरण से बचा जा सकता है। इन सभी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए फार्म का आवास निर्माण, जैव विविधता का समावेश व संधारण तथा प्राकृतिक संसाधनो का उचित प्रयोग प्रमुख कार्यशील बिन्दु है जिन्हे सही रूप में अपनाया जाना आवश्यक है। जैविक आंदोलन से जुड़े उत्पादकों, प्रसंस्कर्ताओं, व्यापारियों तथा उपभोक्ताओं से अपेक्षा है कि सबके सद्भाव हेतु पर्यावरण तथा उससे जुड़े अवयव जैसे आवास, भूदृश्य, ऋतु, जैव विविधता, हवा तथा जल का संरक्षण करें।

समता का सिध्दांत -

जैविक खेती साझा पर्यावरण तथा समान जीवन अवसर को सुनिश्चित करते हुए सभी सम्बन्धों में समभाव प्रतिष्ठित करती है। समान अवसर, सम्मान, न्याय तथा विश्व के प्रति आदर का भाव रखते हुए मानव तथा अन्य जीव स्वरूपों के बीच उचित सम्बन्ध समता के सिध्दांत की मूल कड़ी है। इस सिध्दांत के अंतर्गत वे सभी लोग जो जैविक खेती से जुडे है मानवीय मूल्यों को सर्वोपरि रखते हुए सभी लोगों जैसे किसान, प्रसंस्करणकर्ता, वितरक तथा उपभोक्ता इत्यादि के साथ न्यायपूर्ण समान सम्बन्ध व सम्मान सुनिश्चित करें। जैविक खेती मूल्य सभी के लिये अच्छे जीवनयापन अवसर तथा खाद्यान्न सुरक्षा की गारंटी के साथ गरीबी उन्मूलन की दिशा में प्रयासरत रहने की प्रेरणा देते हैं। इस सिध्दांत के अंतर्गत यह भी सुनिश्चित किया जाता है कि पशुओं को भी अच्छा आवास तथा पर्यावरण मिले जिससे वे एक अच्छे वातावरण में अपनी सभी प्राकृतिक आवश्यकताएं भली-भाँति पूरी कर सकें। सभी प्रकृति प्रदत्त संसाधनों का उत्पादन व उपयोग इस प्रकार किया जाये जो पर्यावरणीय, सामाजिक तथा आर्थिक रूप से न्यायसंगत व स्वीकार्य हो तथा आने वाली पीढ़ियों के संसाधनों को भविष्य के लिये संजो कर रखें ।

परिचर्या का सिध्दांत -

जैविक खेती प्रबंधन प्रक्रिया में सावधानीपूर्वक पूरी निष्ठा व उत्तरदायित्व के साथ यह सुनिश्चित किया जाना चाहिये कि पूरी प्रक्रिया आज की आवश्यकता पूर्ति के साथ-साथ पर्यावरण मित्र हो और आज की तथा आने वाली पीढ़ियों के स्वास्थ्य की देखभाल करे। जैविक खेती एक ऐसी जीवंत तथा लचीली प्रक्रिया है जो सभी आंतरिक तथा बाह्य कारकों के साथ शीघ्र ही सांमजस्य बना लेती है। जैविक प्रबंधन में विभिन्न अवयवों की कार्यक्षमता बढ़ाकर उत्पादन बढ़ाया जा सकता है परंतु यह हमेशा सुनिश्चित किया जाना चाहिये कि यह संसाधनों के दोहन व किसी के भी स्वास्थ्य की कीमत पर न हो । इसके लिए समय-समय पर नई तकनीकों का समावेश तथा पुरानी तकनीकों का मूल्यांकन जरूरी है। इस सिध्दांत के अंतर्गत प्रबंधन, विकास तथा तकनीकों के चयन में सावधानी तथा उत्तरदायित्वता का बोध सर्वोपरि रखा जाता है। सभी के लिये उत्तम स्वास्थ्य तथा पर्यावरण सुदृढ़ता के लिये जैविक प्रबंधन में विज्ञान की भूमिका भी अहम् है, परंतु केवल वैज्ञानिक ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है। कार्य अनुभव, विद्वता तथा समय की कसौटी पर खरे उतरे स्थानीय तथा पारंपरिक ज्ञान भी इसके महत्वपूर्ण अंग हैं। नई तथा जोखिम भरी तकनीकों जैसे परिवर्तित अनुवांशिकी विज्ञान इत्यादि को जैविक खेती से अलग रखा गया है। किसी भी नई तकनीक को

अपनाने से पहले सर्वमान्य रूप से यह सुनिश्चित किया जाना जरूरी है कि इसके प्रयोग से पर्यावरण तथा जीवन के किसी भी अंग पर कोई प्रतिकूल प्रभाव तो नहीं होगा ।

अपने पूर्ण रूप में जैविक खेती एक टिकाऊ उत्पादन प्रक्रिया है जो प्राकृतिक प्रक्रियाओं तथा संसाधनों पर आधारित है। जैविक खेती के प्रमुख बिन्दु निम्नानुसार है :-

- ❖ स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों का उपयुक्त प्रयोग ।
- ❖ सूर्य प्रकाश तथा विभिन्न जैव रूपों की जैविक क्षमता का प्रभावी उपयोग।
- ❖ मिट्टी की उर्वरता का संरक्षण ।
- ❖ जैव अंश तथा पौघ पोषणों का पुनः चक्रीय रूप में प्रयोग।
- ❖ प्रकृति के विरूध्द किसी भी प्रकार के आदान जैसे रसायन तथा परिवर्तित जैव स्वरूपों के उपयोग पर पूर्ण प्रतिबंध ।
- ❖ जैव विविधता का संरक्षण तथा उसका उत्तरोत्तर विकास तथा
- ❖ सभी जीवों तथा पशुओं के साथ आदर व समता का भाव।

जैविक खेती टिकाऊ तथा उत्पादन क्षम होने के साथ-साथ छोटे किसानों के लिये बहुत लाभकारी है। अनेक परीक्षणों से यह सिध्द होता है कि भारत जैसे छोटे खेतिहर किसानों के लिये जैविक खेती सबसे उत्तम व लाभकारी प्रक्रिया है। जैंविक खेती खाद्यान्न सुरक्षा के साथ निम्न विशेषताओं सहित गरीबी उन्मूलन में भी सहायक है।

- ❖ कम उत्पादकता तथा निम्न आदान प्रयोग क्षेत्रों से अधिक उत्पादन सुनिश्चित करती है।
- ❖ खेतों व उनके आस-पास जैव विविधता तथा प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण।
- ❖ उत्पादन लागत में कमीं कर लाभ बढ़ाना।
- ❖ अनेक प्रकार के स्वस्थ भोजन पदार्थो की उपलब्धता बढ़ाना तथा
- ❖ पूरी कृषि प्रक्रिया को दीर्घकालीन टिकाऊ रूप देना।

अंर्तराष्ट्रीय कृषि विकास कोष (IFAD) द्वारा भारत व चीन में किये गये अध्ययनों से भी इस बात की पुष्टि हुई है कि जैविक खेती अपनाने से किसानों की आय में काफी बढ़ोत्तरी होती है। पूरी प्रक्रिया का प्रमाणीकरण जैविक उत्पाद का स्तर बढ़ा सकता है जिससे बाजार में अच्छे दाम प्राप्त किये जा सकते है।

जैविक प्रबंधन
एक समन्वित मार्ग

जैविक प्रबंधन के अन्तर्गत फसलोत्पादन/जैविक खेती प्रबंधन

दृष्टव्य - जैविक खेती प्रबंधन एक ऐसा समन्वित मार्ग है जहां खेती के समस्त अवयव व प्रणाली परस्पर एक दूसरे से सम्बध्द होती है तथा एक दूसरे के लिए कार्य करती है। जैविक रूप से स्वस्थ एवं सक्रिय भूमि फसल पोषण का स्त्रोत है तथा खेत की जैव विविधता द्वारा नाशीजीवी नियंत्रण होता है। फसल चक्र तथा बहु फसलीय कृषि प्रणाली मृदा स्वास्थ के स्त्रोतों को बनाये रखते हैं । पशुधन समन्वय, उत्पादकता तथा स्थायित्व सुनिश्चित करता है। जैविक प्रबंधन स्थानीय स्त्रोतों के अधिकतम उपयोग तथा उत्पादकता पर बल देता हैं।

प्रबंधन सिध्दांत - जीवंत मृदा जैविक खेती का आधार है। जीवंत मृदा उपयुक्त फसल चक्र, फसल अवशिष्ट प्रबंधन तथा प्रभावी फसल परिवर्तन के साथ लम्बे समय तक बिना किसी उर्वरता ह्रास के लगातार उच्च उत्पादन सुनिश्चित करती है। जैविक खेती ऐसी प्रबंधन प्रक्रिया है जिसमें मृदा स्वास्थ्य व पर्यावरण संरक्षण के साथ-साथ उच्च गुणवत्ता के उत्पाद भी प्राप्त होते हैं। इसमें वे सभी कृषि प्रक्रियाऐं शामिल हैं जिनसे पर्यावरण संरक्षा के साथ-साथ अच्छा खाद्य व रेशे प्राप्त हो सकते हों। इन प्रक्रियाओं में मिट्टी की स्थानीय उर्वरता को सफलता का मूल मंत्र रखते हुए पौधों व पशुओं की प्राकृतिक उत्पादन क्षमता तथा स्थानीय पारिस्थिकी का सम्मान किया जाता है और कृषि तथा पर्यावरण के सभी कारकों में उपयुक्त गुण्वत्ता का ध्यान रखा जाता है। जीवंत मृदा संधारण हेतु आवश्यक है कि सभी फसल अवशिष्ट व खरपतवार अवशिष्ट वापस मिट्टी में मिला दिये जायें, पशु गोबर व मूत्र आधारित खादों, जैव वृद्धिकारकों, तरल खादों (जैसे वर्मीवाश व कम्पोस्ट अर्क) इत्यादि का प्रत्येक फसल में भरपूर प्रयोग हो।

जैविक नीति सिद्वांत के अनुसार समस्त फसल अवशिष्ट (अन्न व चारा निकालकर) सीधे या परोक्ष रूप में मिट्टी को लौटा दिया जाना चाहिये। पशुमल व मूत्र को कम्पोस्ट बनाकर डालें। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिये कि जितना भी जैव अंश मानव खाद्य, रेशे, पशु चारा तथा ईंधन हेतु निकाला गया है उतना ही जैव अंश किसी न किसी रूप में मिट्टी को लौटा दिया जाये और इसका वर्षवार पूरा लेखा-जोखा रखना चाहिए ताकि सभी पोषक तत्वों की उपलब्धता बनायी रखी जा सके।

फास्फोरस की कमीं या अम्लीय मृदा में खनिज रॉक फास्फेट एव चूना सीधे रूप में या कम्पोस्ट में मिलाकर डालना चाहिये। कम्पोस्ट को और समृद्ध बनाने के लिये विभिन्न जैव उर्वरक भी कम्पोस्ट में मिलाये जा सकते हैं। विशिष्ट कम्पोस्ट जैसे बायोडायनामिक कम्पोस्ट, गौ पिट पैट कम्पोस्ट, बायोडायनामिक सूत्र जैसे बी.डी. 500 एवं बी.डी. 501, विशेष प्रतिपाद जैसे पंचगव्य, दशगव्य, बायोसोल आदि भी उपयोगी समृद्धिकारक आदान हैं जिनके प्रयोग से उत्पादन में अनुकूल वृध्दि होती है। मृदा को और समृध्द बनाने व कम्पोस्ट तैयार करने हेतु ई.एम. का प्रयोग भी उपयोगी है। अधिक पोषण मांग वाली फसलों तथा समय-समय पर मिट्टी को समृद्ध करने हेतु खली, कुक्कुट खाद, सान्द्र खाद (खली कुक्कुट खाद और रॉक फास्फेट का मिश्रण) इत्यादि का प्रयोग एक उत्तम व कम खर्च उपाय है।

आवश्यक उपाय -

जैविक खेती प्रबंधन योजना बनाने से पूर्व आवश्यक है कि स्थान विशेष व फसलों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ण जानकारी कर एक दीर्घावधि रणनीति बना ली जाये। देश के अधिकांश भागों में जैव अंश के घटते स्तर तथा सूक्ष्म जीवों की घटती संख्या से मृदा स्वास्थ्य एक गंभीर समस्या बन गया है। घटती जल उपलब्धता तथा बढ़ता तापमान समस्या को और जटिल बना रहा है। उद्योग व बाजार आधारित आदान तथा उर्जा स्रोतों पर बढ़ती निर्भरता से कृषि एक ऐसे उद्योग में बदल गई है जिसमें लागत लगातार बढ़ रही है और लाभ लगातार घट रहे हैं जैविक कृषि में हमें इन सभी समस्याओं का निदान कर न केवल कम लागत की उत्पादन क्षम प्रक्रिया विकसित करनी है बल्कि यह भी सुनिश्चित करना है कि यह प्रक्रिया सदियों तक टिकाउ हो और भविष्य के लिये संसाधनों को सुरक्षित कर रखे। जैविक खेती प्रक्रिया के प्रथम चरण में सबसे पहले हमें निम्न बिन्दुओं पर ध्यान देकर प्रक्रिया समाधान करना होगा।

महत्वपूर्ण बिन्दु -

1 मृदा की समृध्दशीलता
2 तापक्रम प्रबंधन
3 वर्षा जल का संधारण
4 सूर्य ऊर्जा का अधिकतम उपयोग
5 आदानों (Inputs) में आत्मनिर्भरता
6 प्राकृतिक चक्र एवं जीव स्वरूपों की सुरक्षा
7 पशुओं का समन्वय तथा पशु शक्ति व स्थानीय स्त्रोतों पर अधिकाधिक निर्भरता

कैसे प्राप्त करें?

1. **मृदा समृध्दशीलता** :- रासायनिक आदानों (Inputs) के प्रयोग को नकारते हुए अधिकाधिक फसल अवशेष का उपयोग, जैविक तथा जैव खाद का प्रयोग, फसल चक्र तथा बहुफसलीय प्रणाली का अपनाया जाना, अधिक व गहरी जुताई का त्याग तथा मृदा को सदा जैविक पदार्थो या पौध अवशेषों से ढ़क कर रखना (मल्चिंग)
2. **तापक्रम प्रबंधन** :- मृदा को ढ़क कर रखना तथा खेत की मेढ़ों पर वृक्ष तथा झाड़ियॉ लगाना ।
3. **मृदा, जल को सुरक्षित रखना** :- जल संधारण गड्डे खोदना, मेंढ़ की सीमा-रेखा का रख-रखाव करना, ढ़लवॉ भूमि पर कन्टूर खेती करना, खेत में तालाब बनाना तथा मेढ़ों पर कम ऊॅचाई वाले वृक्षारोपण करना।
4. **सूर्य ऊर्जा का उपयोग** :- विभिन्न फसलों के संयोजन तथा पौध रोपण कार्यक्रम के माध्यम से पूरे वर्ष हरियाली बनाये रखें।
5. **आदानों में आत्मनिर्भरता** :- अपने बीज का स्वंय विकास करें। कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, वर्मीवाश, तरल खाद तथा पौधों के रस/अर्क का फार्म पर उत्पादन करें।
6. **प्राकृतिक चक्र तथा जीव स्वरूपों की रक्षा** :- पक्षी व पौधों के जीवन यापन हेतु प्राकृतिक स्थान का विकास।

7. **पशुधन समन्वय** :- जैविक प्रबंधन में पशु एक महत्वपूर्ण अंग है जो पशु उत्पाद ही उपलब्ध नहीं कराते बल्कि मृदा को समृध्द करने हेतु पर्याप्त गोबर तथा मूत्र भी उपलब्ध कराते है।
8. **प्राकृतिक ऊर्जा उपयोग** :- सूर्य ऊर्जा, बायोगैस, बैल चलित पंप, जनरेटर तथा अन्य यंत्रों का प्रयोग।

जैविक फार्म का विकास -

जैविक प्रबंधन एक समन्वित प्रक्रिया है, जिसमें एक या कुछ बिन्दुओं को अपनाकर आशानुरूप उपलब्धि या परिणाम प्राप्त नहीं किये जा सकते। उपयुक्त उत्पादन हेतु आवश्यक बिन्दुओं के क्रमबध्द विकास की आवश्यकता है। ये अंग हैं। (क) आवास विकास (ख) आदानों के उत्पादन हेतु फार्म पर सुविधाऐं (ग) फसल चक्र एवं फसल परिवर्तन योजना (घ) 3-4 वर्षीय फसल चक्र नियोजन (ड) जलवायु, मृदा व क्षेत्रीय उपयुक्तता के आधार पर फसलों का चयन।

सुविधाओं का निर्माण - फार्म के कुल क्षेत्रफल का 3-5% स्थान पशुधन, वर्मीकम्पोस्ट, कम्पोस्ट टेंक, वर्मीवाश, कम्पोस्ट अर्क आदि बनाने हेतु सुरक्षित करें छाया हेतु 6-7 वृक्ष इस स्थान पर लगा दें। पानी के बहाव तथा भूमि के ढलान पर निर्भर करते हुए कुछ जल शोषण टैंक (7x3x3 मी.) वर्षा जल संधारण हेतु (एक टेंक प्रति हैक्टेयर की दर से) उचित स्थानों पर बनायें। यदि संभव हो तो एक 20x10 मी. माप का एक तालाब भी फार्म पर बनायें। तरल खाद हेतु 200 ली. क्षमता के कुछ टैंक तथा कुछ पात्र वानस्पतिक अर्क हेतु तैयार करें। 5 एकड़ के फार्म हेतु 1-2 वर्मीकम्पोस्ट शय्या, एक नादेप टैंक, 2-3 वर्मीवाश व 2 कम्पोस्ट अर्क इकाई की आवश्यकता होगी। बायोडायनेमिक सूत्र 501 तथा 502 काफी प्रभावी आदान हैं। इन दोनों सूत्रों के उत्पादन हेतु आवश्यक सुविधायें भी जुटानी चाहिये। 5 एकड़ फार्म हेतु 10 से 12 सींग उत्पाद पर्याप्त होंगे। यदि संभव हो तो बायोडायनेमिक कम्पोस्ट जिसमें बायोडायनेमिक सूत्र 502 से 507 का उपयोग किया जाता है के उत्पादन हेतु भी आवश्यक सुविधा निर्माण करें।

आवास एवं जैव विविधता -

विभिन्न जीवों स्वरूपों के पालन पोषण के लिये उपयुक्त आवास निर्माण जैविक खेती प्रबंधन का एक प्रमुख अंग है। इसे उस स्थान की विशिष्ट मौसम अनुकूलतानुसार विभिन्न प्रकार की फसलों, अलग-अलग प्रकार के बहुपयोगी वृक्ष एवं झाड़ियाँ लगाकर प्राप्त किया जा सकता है। ये पेड़ एवं पौधे न केवल जमीन की गहराई व वायु में उपलब्ध पोषक तत्वों को अवशोषित कर मिट्टी की उपरी सतह में संग्रहित करते हैं अपितु पक्षियों, परभक्षियों, मित्र कीटों को आश्रय भी सुनिश्चित करते हैं। हो सकता है कि इन वृक्षों व झाड़ियों की छाया से कुछ कम फसलोत्पादन हो पर इस क्षति को कीटों से बचाव करके एवं जैविक कीट नियंत्रण प्रणाली से होने वाले फायदों द्वारा पूरा किया जा सकता है। समस्त भूमि पर लगभग 10 एकड़ के फार्म पर 5 से 6 नीम के पेड़, दो गूलर के पेड़, 8 से 10 बेर के पेड़ या झाड़ियां, एक दो आँवले के पेड़ व एक से दो मुनगा/सहजन के पेड़ लगाने चाहिए।

अतिविशिष्टता के आधार पर यदि हम क्षेत्रों को आद्र एवं सूखे क्षेत्र में विभाजित करें तो गीले या आद्रता वाले क्षेत्र में 5-6 नीम के पेड़, 1-2 वुड एप्पल, 1-2 स्टार फल, 8-10 अमरूद, 3-4 मुनगा/सहजन, 1-2 अंजीर एवं 10-15 झाड़ियां शहतूत, घूसबेरी एवं कढ़ी पत्ता आदि लगाने

चाहिये तथा सूखे क्षेत्रों में 5-6 नीम, 1-2 बेल पत्र फल, 8-10 बेर और सीताफल (शरीफा), 1-2 ऑवला,1-2 मुनगा/सहजन के पेड़, 10-15 झाड़ियां ससाका, निरगुंडी आदि के लगाने चाहिये।

पहाड़ी क्षेत्रों में एलनस नेपालेनसिस का पेड़ एक वरदान की तरह काम करता है और काफी मात्रा में जैविक नत्रजन स्थिरीकरण का कार्य करता है। पूर्वोत्तर क्षेत्रों में इस पेड़ को फसल प्रणाली के तहत प्रचलित किया गया है। फसलों के मध्य में प्रुनस, ओक, वक-गेहूं, ल्यूपिन, हिमालयन स्टिगिंग नेटल, मैरीगोल्ड (गेंदा) आदि लगाने से ये पौधे परभक्षियों, व नाशीकीटों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं।

फलउद्यानों में भी समुचित विविधता बनाये रखने के लिए 3 से 5 प्रकार के फलीय पौधे एवं गैर फलीय पौधे लगाने चाहिये (उपरोक्तानुसार)।

सभी प्रमुख खेतों/भूखण्ड के चारों ओर लगभग डेढ़ मीटर की मेढ बनाकर उनपर ग्लिरीसीडिया, सिसबानिया (ढैंचा), सुबबूल, केसिया सीमिया आदि पेड़ लगाने चाहिये। छोटे भूखण्ड मेढों पर अरहर, क्रोटोलेरिया, मौसमी सिसबानिया के पौधे आदि लागाने चाहिये। समय-समय पर इन पौधों की पत्तियॉं व टहनियॉं काटकर खेतों में डालने से भरपूर मात्रा में जैविक रूप से स्थिरीकृत नत्रजन की प्राप्ति होती है। ध्यान रहे, मेढों पर लगी ये झाड़ियों 1½मीटर से अधिक चौड़ी तथा 5.5 फुट से अधिक उॅंची न हो पायें। समय-समय पर इनकी कटाई-छॅंटाई करें तथा निकाली पत्तियों व टहनियों को उसी खेत में मल्च रूप में फैलाकर डाल दें।

ग्लिरीसीडिया/सिसबानिया पौधों के बीच-बीच में कीटनाशी मूल के पौधे जैसे - एडेथोड़ा, निर्गुन्डी, ऑक, धतूरा तथा बेशरम/बेहया के पौधे आदि लगाना चाहिये। फार्म या बगीचे के चारों ओर एक जीवंतता प्रदान करने के लिए बहुपयोगी, गहरी जड़ों वाले पेड़ व झाडियां लगानी चाहिये। पारिस्थितिक जैव विविधता सफल जैविक खेती प्रणाली बनाये रखने का प्रमुख अवयव है।

कम्पोस्ट व पशुधन आरक्षित स्थानों पर बड़े पेड़ों को बढ़ने दिया जाना चाहिये। फार्म के चारों ओर मुख्य मेढों पर कम फासले से ग्लिरीसीडिया की बाढ लगायें और निश्चित अंतराल पर इन्हे काट-छांट कर खेतों में डालते रहें। यह बाढ मात्र जैविक घेरा बंदी का कार्य ही नहीं करेगी बल्कि जैविक रूप से स्थिरीकृत नत्रजन से खेतों की भूमि को समृद्ध भी करेगी। ग्लिरीसिडिया की 400 मीटर लंबी पट्टी तीसरे वर्ष से 22.5 कि.ग्रा. नत्रजन/प्रति है, तथा सातवें वर्ष से 77 कि.ग्रा. नत्रजन/है. प्रतिवर्ष उपलब्ध करा सकती है। यह मात्रा सिचिंत दशाओं में 75 से 100 प्रतिशत अधिक हो सकती है। सिंचित दशा में 3-4 बार तथा असिंचित दशा में दो बार कटाई-छंटाई की जा सकती है। छाया का कुप्रभाव रोकने हेतु इन पौधों को 5.50 फुट से अधिक कभी न बढ़ने दें। हर तीसरे/चौथे महीने में छंटाई करते रहें और अवशेषों को हरी खाद के रूप में प्रयोग करें। पत्तियां आदि को कटाई के बाद मिट्टी में मिला दें अथवा मल्च के रूप में प्रयोग करें।

मृदा का जैविक रूपान्तरण

रसायनों पर प्रतिबंध - यह सर्वविदित है कि विभिन्न जैविक क्रिया द्वारा पौधे अपने पोषक तत्वों जैसे नत्रजन को नत्रजन स्थिरीकरण द्वारा प्राप्त करते है। परंतु उर्वरकों के अधिक प्रयोग से ये

जैविक प्रकियाएं बाधित होती हैं। इसीलिये मृदा विज्ञानी हमेशा अधिक से अधिक कम्पोस्ट खाद डालने हेतु प्रोत्साहित करते हैं क्योंकि अगर ऐसा न किया जाये तो बहुउपयोगी सूक्ष्मजीवों व सूक्ष्म मात्रिक तत्वों की मृदा में कमी हो जायेगी। रसायनों के प्रयोग से होने वाले प्रतिकूल प्रभावों के मद्देनजर जैविक कृषि प्रणाली में रसायनों के लिए कोई स्थान नहीं है।

न्यून/कम आदान विकल्प -

प्रथम वर्ष में विभिन्न अवस्थाओं वाली तीन भिन्न-भिन्न प्रकार की दलहनी फसलों की बुआई करें, पहली 60 दिनों वाली फसल (जैसे मूंग), दूसरी 90 से 120 दिनों वाली फसल (चौला या सोयाबीन) एवं तीसरी 120 दिनों से ज्यादा वाली फसल (जैसे अरहर)। आधारीय खुराक के तौर पर कम्पोस्ट एवं वर्मी कम्पोस्ट का मिश्रण 2:1 के अनुपात में 2.5 टन प्रति एकड की दर से 4 किलो एजोटोबैक्टर एवं 4 किलो पी.एस.बी. जैव उर्वरक या 4 किलो जैव उर्वरक मिश्रण बुआई के समय डालना चाहिये। दलहनी फसलों के बीजों को उस फसल के निर्धारित राइजोबियम जैव उर्वरक द्वारा उपचारित करना न भूलें। पूरी सतह पर जैव अवशिष्ट की एक मोटी परत बिछाकर जीवामृत 200 लीटर प्रति एकड़ की दर से फैला दें। पौधों का अंकुरण इस सतह से ऊपर निकल आयेगा। अगर मृदा में फास्फोरस की मात्रा कम हो तो 300 किलो खनिज रॉक फास्फेट को कम्पोस्ट के साथ मिलाकर डालना चाहिये। जीवामृत की दूसरी खुराक बुआई के 25 से 30 दिनों के बाद सिंचाई के दौरान या वर्षा के दौरान डालनी चाहिये।

विविधता बनाये रखने के लिए खेत या फार्म में गेंदा या लाल आम्बाडी (हिबिसकस सबदारिफा) या अन्य उपयुक्त पौधे (जो कीटों को अपनी ओर आकर्षित करें) बिखरे हुए रूप में लगाने चाहिये। इसी तरह सब्जियों वाले पौधे जैसे मिर्च, टमाटर, बैंगन आदि एवं हल्दी अदरक आदि के बल्ब या कंद बिखरे हुए रूप में घर में इस्तेमाल हेतु लगाने चाहिये।

फल/फलियों एवं सब्जियों को तोड़ लेने के पश्चात् बचे हुए पौध अवशिष्ट को मल्च के रूप में प्रयोग करें। फसलों के अवशेषों को एकत्र कर ढेर के रूप में लगाकर उस पर जीवामृत छिड़कें और फिर 5-7 दिन बाद मल्च रूप में प्रयोग करें। 60 से 120 दिन वाली फसलों की कटाई के बाद खाली हुए स्थान पर लघु अवधि की सब्जी वाली फसलें जैसे पालक, मेथी या धनिया आदि बो दें, तथा सतह पर जीवामृत से उपचारिता अवशिष्ट फैला दें। इन फसलों की कटाई के पश्चात् बाकी बचे अवशेषों को भूमि में ही मिला देना चाहिये।

आगे आनी वाली ऋतु या मौसम में कम्पोस्ट एवं वर्मी कम्पोस्ट का मिश्रण 2.5 टन प्रति हेक्टेयर की दर से भूमि में डालें और अन्न एवं दालों वाली फसल बीच-बीच में सह फसल के तौर पर या मिश्र फसल रूप में बुवाई करें। यदि सिंचाई के पर्याप्त साधन है तो गर्मी में लगने वाली दालों वाली फसल को सब्जियों वाली फसलों के साथ मिलाकर बोएं। पुर्नचक्रण हेतु फसलों के बचे अवशेषों को ढेर लगाकर रखे लें। प्रत्येक फसल में मृदा उपचार हेतु 3 से 4 बार तरल खाद (जैसे जीवामृत) का प्रयोग करना चाहिये। लगभग 12-18 महीने बाद भूमि जैविक उत्पादन हेतु उपयुक्त हो जायेगी। ध्यान रहे अगले दो तीन वर्ष तक धान्य फसलों के साथ दलहनी फसलों को सह व मिश्र फसल रूप में अवश्य लगायें। यह भी सुनिश्चित करें कि जो भी फसल अवशिष्ट मल्च रूप में या मिट्टी

में मिलाया जा रहा है उसका एक तिहाई भाग दलहनी फसल का हो तथा पूरा अवशिष्ट तरल खाद से उपचारित हो।

अधिक आदान विकल्प -

2.5 से 3.0 टन कम्पोस्ट/वर्मी कम्पोस्ट या 1.5 टन बायोडायनामिक कम्पोस्ट, 500 किलो खली चूर्ण खाद, 500 किलो रॉक फास्फेट, 100 किलो नीम केक/खली, 5 किलो एजोटोबैक्टर एवं 5 किलो पी.एस.बी. जैव उर्वरक को मृदा में छिड़काव पध्दति द्वारा फैला दें। 3-4 प्रकार की फसलों की पंक्तियों में बुआई करें। इसमें 40% दलहनी फसलें होनी चाहिये। विविधता बनाये रखने के लिए 100 से 150 पौधे गेंदे के और सब्जियों के लगाने चाहिये। फसल कटाई के पश्चात् बचे हुए अवशेषों को मिट्टी में ही दबा देना चाहिये या अन्य फसल बोने के पश्चात् मल्च के रूप में उपयोग करना चाहिये। दूसरी फसल लेने के लिए भी उपरोक्त मात्रा में खादों का प्रयोग करें। 200 लीटर तरल खाद (जीवामृत) प्रति एकड़ की दर से जल के साथ पूरे फसल सीजन के दौरान 3-4 बार उपयोग करें। अधिक फसलोत्पादन हेतु वर्मीवॉश या वर्मीबॉश के साथ गौ मूत्र या पंचगब्य का पर्णीय छिड़काव भी किया जा सकता है।

फलों के बाग या फल वाटिका में 3-4 प्रकार की मिश्रित दलहनी फसलें मिश्रित रूप से उपरोक्त खादों की मात्रा डालकर लगानी चाहिये। फसल कटाई के पश्चात् बचे अवशेषों को भूमि में दबा देना चाहिये और जीवामृत का दो बार उपयोग करना चाहिये।

12 से 18 महीने पश्चात् किसी भी मिश्रित फसल को जैविक रूप से बोने हेतु मृदा तैयार हो जायेगी। अगले दो-तीन वर्षो तक किसी भी फसल को दलहनी फसलों के साथ मिश्रित या सहचरी फसलों के रूप में बोया जा सकता है। यह अवश्य सुनिश्चित करे लें कि कटाई के पश्चात् जो अवशेष मिट्टी को लौटाया जा रहा है उसका 30 प्रतिशत भाग दलहनी फसलों का हो और उसे तरल खाद से उपचारित किया हो।

बहुफसल प्रणाली तथा फसल चक्र -

मिश्रित फसलोत्पादन जैविक खेती का मूल आधार है, जिसमें कई प्रकार की फसलों को एक साथ मिश्रित रूप में या अलग-अलग समय पर एक ही भूमि पर बोया जाता है। प्रत्येक मौसम में ध्यान रखना होगा कि दलहनी फसलें लगभग 40 प्रतिशत मात्रा में बोई जाए। मिश्रित फसलोत्पादन से न केवल बेहतर प्रकाश संश्लेषण होता है बल्कि विभिन्न पौधों के बीच पोषक तत्वों के लिये होने वाली मॉग को भी नियंत्रित किया जा सकता है। विभिन्न प्रकार के पौधे मृदा की अलग-अलग गहराई से अपने पोषक तत्वों को ग्रहण करते है। दलहनी फसलें वायुमण्डल से अत्याधिक मात्रा में नत्रजन एकत्र करती है और अपनी सहचरी फसलों को भी उपलब्ध कराती है। गहरी जड़ों वाले पौधे गहराई से अपने पोषक तत्वों को ग्रहण करते है और पेड़ से गिरने वाले पत्तों के रूप में उन्हे पुनः मृदा के तल पर ला देते है। इस प्रकार जो पोषक तत्व पुनः धरती के भीतर चले जाते है गहरी जड़ों वाले पौधों द्वारा इन्हे पुनः अवशोषित कर मृदा की उपरी सतह पर लाया जाता है। इससे मृदा के क्षरण को भी रोकने में सहायता मिलती है। किसान मौसम और अपनी आवश्यकता के अनुसार मिश्रित फसलों का चुनाव कर सकते है।

मिश्रित फसलों का चुनाव करने से पूर्व इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि पौधों की भी अपनी पंसद एवं नापसंद होती है जैसे मक्का बीन्स व खीरा में अच्छा तालमेल रहता है, टमाटर की फसल, प्याज और गेंदा की फसल के साथ ठीक तरह से बढ़ती है। बीन्स की फसल, प्याज के साथ तालमेल नहीं कर पाती है।

पूरे खेत में हर समय 8 से 10 प्रकार की फसलों को लगाया जा सकता है। प्रत्येक प्लाट/भू-खण्ड में लगभग 2 से 4 तरह की फसले ली जा सकती है। इनमें एक फसल दलहनी होना अनिवार्य है। यदि एक प्लाट में एक ही फसल ली जा रही है तो उसके ठीक बाजू वाले प्लाट में दूसरी फसल लगाये। विविधता बनाये रखने, कीट नियंत्रण एवं घरेलू इस्तेमाल हेतु 50-150 पौधे प्रति एकड़ की दर से सब्जियां पूरे खेत में फैलाकर लगायें 100 पौधे प्रति एकड़ की दर से गेंदा लगाने से भी जैव विविधता का निर्माण होता है और कीट नियंत्रण में सहायता होती है। अधिक पोषण मांग वाली फसलों (जैसे गन्ना) की अच्छी उत्पादकता हेतु उन्हें दलहनी फसलों एवं हरी पत्ती वाली सब्जी फसलों के साथ उगाया जा सकता है।

फसल चक्र -

फसल चक्र जैविक खेती की रीढ़ है। मृदा को शक्तिशाली और समृध्द बनाने व प्राकृतिक जीवाणुओं की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए फसल चक्र अति आवश्यक है। एक ही भूमि पर विभिन्न फसले लेना ही फसल चक्र कहलाता है। जैविक प्रबंधन हेतु 3 से 4 वर्षीय फसल चक्र अपनाये। उच्च पोषण वाली फसलों की बुआई से पूर्व तथा पश्चात् दलहनी फसलों की बुवाई करें। नाशीजीव कीट मेजबान व मित्रकीट मेजबान फसलों को फसल चक्र में शामिल करने से मृदा जनित रोग एवं नाशीजीव कीटों की रोकथाम में सहायता होती है। इससे खरपतवार बढ़वार भी नियंत्रण में रहती है। यह मृदा की उर्वरता एवं उत्पादकता बढ़ाने में भी सहायक होती है। फसल चक्र में पौधों की विभिन्न प्रकार की जड़ों के कारण मृदा की संरचना में सुधार होता है। दलहनी फसलों को फसल चक्र में महत्वपूर्ण स्थान देना चाहिये। अन्न वाली फसलों और सब्जियों के साथ दलहनी फसलों को सहफसल रूप में बोना चाहिये। उच्च पोषण वाली फसलों के पूर्व और पश्चात् दलहनी फसलें लेनी चाहिये और बचे अवशेषों को पुनः मृदा में काटकर दबा देना चाहिये। फसल चक्र के कुछ महत्वपूर्ण लाभ इस प्रकार है :-

1. सभी पौधों की एक समान पोषक तत्वों की आवश्यकता नहीं होती एवं भिन्न प्रकार के पौधे अलग-अलग स्तरों सें पोषण प्राप्त करते हैं।
2. विभिन्न प्रकार की जड़ों से मृदा की संरचना में सुधार होता है।
3. नाशीजीव कीटों की बढोत्तरी में रोकथाम होती है तथा
4. बदलते फसल चक्र सें खरपतवारों की बढवार पर भी लगाम लगाई जा सकती है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के कार्यशील राष्ट्रीय जैविक खेती की नेटवर्क परियोजना के तहत कृषि प्रणाली अध्ययन में यह पाया गया कि जैविक खेती पारंपरिक खेती की अपेक्षा अधिक लाभकारी है और इसमें खर्च अत्यंत कम आता है। अनेक केन्द्रों पर किये गये परीक्षणों के आधार पर निम्न फसल चक्रों की अनुशंसा की गई है।

(1) सोयाबीन - बरसीम/सरसों/चना (रायपुर, छत्तीसगढ़)

(2) टमाटर/बंधागोभी -फूलगोभी, मटर एवं मक्का, बाजरे पर लहसुन (हिमाचल प्रदेश)

(3) चावल-गेंहू/आलू/सरसो/मसूर (रांची, झारखण्ड)
(4) मूंगफली- रबी ज्वार, सोयाबीन-ड्यूरम गेहूँ, आलू, मूंग, मिर्च+कपास एवं मक्का-मूंग (धारवाड़, कर्नाटक)
(5) सोयाबीन- ड्यूरम गेहूँ/सरसों/मूंग/इसबगोल (भोपाल, मध्यप्रदेश)
(6) चावल- ड्यूरम गेहूँ/बरसीम, चावल-आलू भिंडी एवं चावल-लहसुन, ज्वार+ग्वार- जई-मूंग (लुधियाना, पंजाब)
(7) मक्का-कपास, मिर्च-प्याज एवं बैंगन-सूरजमुखी (कोयम्बटूर)
(8) ज्वार-मटर-भिंडी (मोदीपुरम, उत्तरप्रदेश)
(9) गाजर/चावल (खरीफ पूर्व) चावल (खरीफ), आलू/चावल (खरीफ पूर्व), चावल (खरीफ), टमाटर/चावल-चावल (खरीफ पूर्व), चावल (खरीफ), फ्रैंच बीन/चावल (खरीफ पूर्व), चावल (खरीफ) (उमियम, मेघालय)

समृध्द तथा जीवंत मृदा की अवस्था - एक उर्वर तथा जीवंत मृदा में जीवाश्म (जैव कार्बन) का स्तर 0.8 से 1.5% के बीच रहना चाहिए। समस्त अवधि में सूक्ष्म वनस्पति व जीवों के प्रयोग हेतु इसमें पर्याप्त सूखा, अर्ध्द अपघटित तथा पूर्ण अपघटित जैविक द्रव्य रहना चाहिये। कुल सूक्ष्म जीवाणु (बैक्टीरिया, फफूंद तथा एक्टोनोमाइसिस) की मात्रा $1x10^8$ प्रति ग्राम से अधिक होनी चाहिए। कम से कम 3-4 केंचुएं प्रति घन फिट हों। पर्याप्त मात्रा में छोटी जीवन अवधि वाले कीट पतंगे तथा छोटी चींटी आदि भी होने चाहिए।

बीज/रोपणी/सामग्री का उपचार-

जैविक प्रबंधन में केवल समस्याग्रस्त क्षेत्रों/अवस्था में बचाव के उपाय किये जाते हैं। रोग रहित बीज तथा प्रतिरोधी प्रजातियों का प्रयोग सबसे अच्छा विकल्प हैं। यद्यपि अभी कोई भी मानक सूत्र उपचार विधि उपलब्ध नहीं है परंतु कृषक विभिन्न विधियों का प्रयोग करते है। कुछ अग्रणी किसानों के बीज उपचार सूत्र निम्न प्रकार है :-

(1) 53^0 सें.ग्रे. तापक्रम पर 20-30 मिनट तक गरम जल उपचार।
(2) गोमूत्र अथवा गौ मूत्र-दीमक टीला मृदा पेस्ट ।
(3) बीजामृत।
(4) हींग (Asphoetida) 250 ग्रा./10 कि.ग्रा. बीज की दर
(5) हल्दी पाउडर गौ-मूत्र में मिला कर भी बीज उपचार हेतु प्रयोग किया जा सकता है।
(6) पंचगव्य सत
(7) दशपर्णी सत
(8) ट्राईकोडर्मा विरीडी (4 ग्रा./ कि. बीज) या स्यूसोडोमोनास (10 ग्रा.प्रति कि. बीज)
(9) जैव उर्वरक (राईजोबियम/एजोटोबैक्टर+पी.एस.बी.)

बीजामृत को तैयार करना -

पांच किलो ताजा गाय का गोबर लेकर एक कपड़े की थैली में रखकर एक पात्र में रख दें और पात्र को पानी से भर दें। इससे गोबर में विद्यमान सारे तत्व/अंश छनकर पानी में आ जायेंगे। दूसरे पात्र में 50 ग्रा. चूना लेकर एक लीटर पानी में मिलायें। 12 से 16 घंटे बाद कपड़े की थैली

को दबाकर निचोड़ लें और गोबर अर्क के साथ पांच लीटर गौ मूत्र मिला दें, 50 ग्रा. जंगल की शुध्द मिट्टी, चूने का पानी और 20 लीटर सादा पानी भी मिला दें। 8-12 घंटों तक इस मिश्रण को छोड़ दीजिए इसके पश्चात् पूरा मिश्रण छान लें। छना हुआ मिश्रण बीजोपचार के लिये उपयोग करें।

खाद तथा मृदा समृध्दिकरण -

रूपांतरण या परिवर्तन के दौरान जैविक खाद/वर्मीकम्पोस्ट (केंचुआ खाद), हरी खाद एवं जैव उर्वरक समुचित मात्रा में डालने से मृदा की उर्वरता बढ़ती है और प्रारंभिक स्तर पर उर्वरता बनाये रखने में मदद मिलती है। ये जैविक आदान मृदा के भोजन के रूप में कार्य करते हैं। पूर्ण पोषित जीवाष्मयुक्त स्वस्थ मृदा फसलों की सभी पोषक तत्वों की आवश्यकता को पूरा करती है। पौध अवशेष, गोबर की खाद, सम्वर्धित कम्पोस्ट, बायोडायनामिक कम्पोस्ट, काऊ पैट-पिट कम्पोस्ट एवं केंचुआ खाद आदि प्रमुख जैविक आदान है। अन्य स्रोतों से प्राप्त तथा क्रय किये जाने वाले जैविक आदानों में प्रमुख हैंः अखाद्य तिलहन की खली, कुक्कुट खाद, जैव उर्वरक, रॉक फॉस्फेट, चूना आदि।

मेंढों पर लगे ग्लिरीसिडिया तथा अन्य पौधों के अवशेष, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, पशु गोबर-मूत्र तथा फसल अवशेष पोषण के मुख्य स्त्रोत होने चाहिए। जैव उर्वरक तथा सांद्र खाद, जैसे खली चूर्ण खाद, मुर्गी खाद, सब्जी बाजार कचरा कम्पोस्ट, जैव शक्तिमान खाद, प्रभावी सूक्ष्म जीवाणु खाद आदि का प्रयोग उचित मात्रा में किया जा सकता है। अधिक मात्रा में खाद के प्रयोग से बचना चाहिए। फसल चक्र परिवर्तन तथा बहु-फसल से संसाधनों का बेहतर उपयोग सुनिश्चित होता है। फसल के प्रकार तथा विभिन्न फसलों हेतु पोषकों की आवश्यकता के आधार पर खाद की मात्रा निश्चित की जाती है। सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रियाशीलता बनाये रखने के हेतु तरल खाद का उपयोग आवश्यक है। समस्त प्रकार की फसलों हेतु 3-4 बार तरल खाद का प्रयोग आवश्यक है। वर्मीवाश/कम्पोस्ट अर्क तथा गौ-मूत्र इत्यादि बहुत ही अच्छे वृध्दि उत्प्रेरक (Growth Hormones) हैं तथा इनका पत्तियों पर छिड़काव रूप में प्रयोग किया जाता है। बुवाई के 25-30 दिन बाद 3-4 बार प्रयोग से अच्छा उत्पादन सुनिश्चित होता है। वृध्दिकारक तत्वों के रूप में बायोडायनामिक सूत्र जैसे बी.डी. 500 एव बी.डी. 501 का छिड़काव भी लाभकारी सिध्द हुआ है।

जैव उर्वरकों एवं जीवाणु कल्चर का उपयोग - उर्वरता के प्रबंधन और पोषक तत्वों की निरंतर उपलब्धता बनाये रखने हेतु जैव उर्वरकों जैसे राइजोबियम, एजोटोबैक्टर आदि अत्यंत उपयोगी आदान है। स्थानीय जलवायु के आधार पर कुछ ऐसे सूक्ष्म जीवों द्वारा उर्वरक तैयार किये जा रहे है जो अलग-अलग स्थान और जलवायु में कारगर सिध्द हुए है। अनेक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि जहॉ रासायनिक खादों का उपयोग नहीं होता है वहॉ ये जीवाणु आदान अधिक प्रभाावी हैं। अतः खेती की प्रत्येक अवस्था में तथा सभी फसलों में इनका प्रयोग करना सुनिश्चित करें।

जैव उर्वरक उपयोग विधि -

1 **बीजोपचार** - दो सौ ग्राम नत्रजन स्थिरीकरण जैव उर्वरक एवं 200 ग्राम पी.एस.बी. जैव उर्वरक 300 से 400 मि.ली. पानी में अच्छी तरह मिला लें। इस घोल को 10 से 12 किलो बीजों पर डालकर हाथ से तब तक मिलाये जब तक कि समस्त बीजो पर समान परत न

चढ़ जाए अब इन बीजों को छायादार एवं हवादार स्थान पर सूखने के लिए रख दें। अम्लीय और क्षारीय मिट्टी वाली भूमि के लिए हमेशा यह सलाह दी जाती है कि जैव आधारित बीजों को एक किलो बुझा हुआ चूना अम्लीय मृदा में या जिप्सम पाउडर (क्षारीय मृदा हेतु) द्वारा उपचारित करें।

2 **जड़ोपचार** - एक से दो किलो नत्रजन स्थिरीकरण जैव उर्वरक (एजोटोबैक्टर/एजोस्पारिलम) एवं पी.एस.बी. जैव उर्वरक को पर्याप्त जल (5 से 10 लीटर या एक एकड़ में लगाये जाने वाले रोपों की मात्रा के अनुसार) में घोल बनाये। तत्पश्चात् बुआई करने वाले रोपों की जड़ों को इस घोल में 20 से 30 मिनट तक रोपाई करने से पहले डुबो कर रखें। धान की रोपाई के लिए खेत में एक क्यारी बनायें (2 मी.X 1-5 मी. X 0-15 मी.) इस क्यारी को 5 से.मी. तक पानी से भर दें और इसमें दो किलो एजोस्पाइरिलम एवं दो किलो पी.एस.बी. डालकर धीरे-धीरे मिलाये, इसके पश्चात् रोपे जाने वाले पौधों की जड़ों को 8 से 12 घंटों के लिए (पूरी रात) डुबोकर रख दें और रोपा लगाये ।

3 **मृदा उपचार** - मृदा उपचार कुल लगाये जाने वाले पौधों की संख्या पर निर्भर करता है, दो से चार किलो एजोटोबैक्टेर/ एजोस्पाइरिलम एवं दो से चार किलो पी.एस.बी. एक एकड़ के लिए पर्याप्त है । इन दोनों प्रकार के जैव उर्वरकों को दो से चार लीटर पानी में अलग-अलग मिलाकर 50 से 100 किलों के कम्पोस्ट के अलग-अलग ढेरों पर छिड़काव करें । दोंनों ढेरों को अलग-अलग मिलाकर पूरी रात के लिए छोड़ दें। 12 घंटे बाद दोनों ढेरों को आपस में अच्छी तरह मिला दें । अम्लीय मृदा के लिए 25 किलो चूना इस ढेर के साथ मिला दें । पेड़ रूप में लगाये जाने वाली फसल के प्रत्येक पेड़ के पास खुरपी की सहायता से इस मिश्रण को पेड़ के चारों ओर डाल दें । खेतों में बोई जाने वाली फसलों के लिए पूरे खेत में बुवाई से पहले इस मिश्रण को अच्छी तरह छिड़क दें । गन्ने की फसल में जैव उर्वरकों को बुआई के 30&40 दिनों बाद जड़ों के पास डालकर मिट्टी से ढ़क दें । आलू व गन्ने की फसल में दो बार जैव उर्वरक उपचार किया जा सकता है। पहली बार बुवाई के समय कंदों व गन्ने के टुकडों को जैव उर्वरक घोल में डुबोकर उपचारित करें तथा दूसरी बार मिट्टी चढ़ाते समय अंकुरित पौध जडों के पास डालकर मिट्टी चढा दें।

मृदा की समृध्दता बनाये रखने के कुछ महत्वपूर्ण उपाय एवं सूत्र -

तरल खाद निर्माण -

विभिन्न राज्यों के किसानों द्वारा अनेक प्रकार के तरल खाद प्रयोग किये जा रहे है। कुछ महत्वपूर्ण तथा वृहत् रूप से प्रयोग किये जाने वाले सूत्रों का विवरण नीचे दिया जा रहा है :-

संजीवक - 100 कि.ग्रा. गाय का गोबर + 100 लीटर गौ-मूत्र तथा 500 ग्रा. गुड को 500 ली. क्षमता वाले ड्रम में 300 लीटर जल में मिलाकर 10 दिन हेतु सड़ने दें। 20 गुना पानी मिलाकर एक एकड़ क्षेत्र में मृदा पर स्प्रे करें अथवा सिंचाई जल के साथ प्रयोग करें।

जीवामृत - 10 कि.ग्रा. गाय का गोबर + 10 ली. गौ-मूत्र + 2 कि.ग्रा. गुड तथा किसी दाल का आटा + 1 कि.ग्रा. जीवंत मृदा को 200 लीटर जल में मिलाकर 5&7 दिनों हेतु सड़ने दें। नियमित रूप से दिन में तीन बार मिश्रण को हिलाते रहें। एक एकड़ क्षेत्र में सिंचाई जल के साथ प्रयोग करें।

अमृत पानी - 500 ग्रा. शहद के साथ 10 किलो गाय के गोबर को मिलाकर तब तक फेटें (एक लकड़ी की सहायता से) जब तक वह लुगदी (पेस्ट) जैसा न हो जाये, इसके बाद इसमें 250 ग्रा. गाय का देशी घी मिलाकर तेजी से मिलाये। इसे 200 लीटर पानी में मिलाकर घोल लें। इस घोल को एक एकड़ जमीन पर छिड़क दें। या सिंचाई वाले पानी के साथ फैला दें। 30 दिनों के बाद दूसरी खुराक के रूप में पौधों की कतारों के बीच में छिड़के या सिंचाई वाले पानी के साथ फैला दें।

पंचगव्य - 5 किलो गाय का गोबर, 3 लीटर गौ-मूत्र, 2 लीटर गाय का दूध, दही दो लीटर, गाय के दूध से बना मक्खन एक किलो मिलाकर सात दिनों के लिए सड़ने को रख दें और इसे रोज दिन में दो बार हिलाते रहें। सात-आठ दिन में यह तैयार हो जायेगा तीन लीटर पंचगव्य को 100 लीटर पानी में मिला लें और मृदा पर छिड़क दें। सिंचाई के पानी के साथ मिलाकर 20 लीटर पंचगव्य को प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़कना चाहिये।

समृध्द पंचगव्य (या दशगव्य) - आवश्यक चीजें - पांच किलो गाय का गोबर, तीन लीटर गो-मूत्र, दो लीटर गाय का दूध, दही दो लीटर, एक किलो गाय का देशी घी, तीन लीटर गन्ने का रस, तीन लीटर कच्चे नारियल का पानी, 12 केलो को मसलकर तैयार पेस्ट एवं ताडी या अंगूर का रस दो लीटर, एक पात्र में गाय का गोबर और देशी घी मिलाकर तीन दिनों तक सड़ने के लिए रख दें। बीच-बीच में इसे हिलाते रहना जरूरी है। चौथे दिन उपरोक्त सभी चीजें इसमें मिला दें और 15 दिनों के लिए (प्रति दिन दो बार हिलाना जरूरी है) सड़ने को रख दें 18 वें दिन यह तैयार हो जाएगा गन्ने के रस के स्थान पर 500 ग्राम गुड 3 लीटर पानी के साथ मिलाकर उपयोग किया जा सकता है। या यीस्ट पाउडर को 100 ग्रा. गुड और दो लीटर गरम पानी के साथ मिलाकर उपयोग कर सकते है। छिड़काव हेतु 3 से 4 लीटर दशागव्य को 100 लीटर पानी में मिला लें। मृदा (मिट्टी) में डालने हेतु 50 लीटर पंचगव्य एक हेक्टेयर के लिए पर्याप्त है। इसे बीजोपचार हेतु भी उपयोग किया जा सकता है।

तापमान प्रबंधन - गर्मियों में तापमान अधिक होता है जिसका नियंत्रण करना आवश्यक है। यह नियंत्रण मृदा को मल्च द्वारा ढ़ककर किया जा सकता है। मल्च बिछाने से मृदा की नमी बनी रहती है और जल संग्रहण क्षमता बढ़ जाती है। इक्रीसेट में किये गए दीर्घावधि परीक्षणों के बाद ज्ञात हुआ है कि सबसे अधिक गर्मी वाले दिन (अप्रैल 30 सन 2002) में मल्च को मृदा पर बिछाने से 5 से 10 सें.मी. की गहराई तक मृदा तापमान में 6-5 से 7.30 डिग्री सें.ग्रे. की कमी होती है (रूपेला et.al. 2005)। तापमान को खेतों की मेड पर विभिन्न प्रकार के पेड़ जैसे नीम, ऑवला, इमली, गूलर, बेर झाडियां एवं ग्लिरीसीडिया इत्यादि लगाकर भी नियंत्रित किया जा सकता है।

समस्त जीवित अवयवों की सुरक्षा -

पौध अवशेषों व फसलों एवं खरपतवार से तैयार मल्च के प्रयोग से मिट्टी के विभिन्न जैव स्वरूपों को संरक्षित किया जा सकता है। रसायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों का उपयोग निषिद्ध करने से भी जीवित अवयव सुरक्षित रहते है। विभिन्न जीवित अवयवों का पालन सुनिश्चित करने के लिये मृदा में सूखा, अर्द्धअपघटित व पूर्ण अपघटित जीवाष्म का होना आवश्यक है। सूखे जैविक तत्व छोटे

कीट पतंगों और छोटे जानवरों के लिए भोजन है, अल्प विघटित जीवाष्म केंचुओं के भोजन के लिए उपयुक्त है एवं पूर्ण विघटित तत्व सूक्ष्म जीवों का भोजन है ये सभी कीट पतंगे, छोटे जानवर केंचुए एवं सूक्ष्म जीव प्राकृतिक रूप से स्वस्थ मृदा के अभिन्न अंग हैं और ये सभी मिल-जुलकर विभिन्न कार्य करते हैं। छोटे जानवर एवं कीट पतंगे हानिकारक कीटों के लार्वा को खा लेते है जिससे कीटों का नियंत्रण होता है। केंचुए अल्प विघटित पदार्थो को खाकर उसे पूर्ण विघटित मल के रूप में बाहर निकालते है जो उत्कृष्ट खाद है। केंचुओं की उपस्थिति मृदा के रंध्रों को खोलकर उसकी वायवीय अवस्था में सुधार लाती है। मृदा में उपस्थित जैविक कार्बन जिस पर पर्याप्त मात्रा में उपयोगी सूक्ष्म जीव पलते हैं तथा नत्रजन स्थिरीकरण, अघुलनशील फॉस्फेट को घुलनशील बनाने, प्रकाश संश्लेषण क्रिया में एवं सैल्यूलिटिक प्रक्रिया में सहायक होते है। यह हमेशा सुनिश्चित किया जाना चाहिये कि मृदा में उपस्थित समस्त जीवित अवयवों की सुरक्षा हर समय हो।

नाशी जीव प्रबंधन – जैविक खेती प्रबंधन में रसायनिक कीटनाशकों का प्रयोग वर्जित है। अतः नाशी प्रबंधन प्रमुखतया निम्न विधियों द्वारा किया जाता है :-

1. जुताई व्यवस्था 2. यांत्रिक 3. जैविक तथा 4. स्वीकार योग्य वनस्पितक अर्क या कुछ रसायन जैसे कॉपर सल्फेट, सॉफ्ट सोप आदि द्वारा।

* **जुताई विकल्प** (Cultural Alternative) - रोग रहित बीज तथा प्रतिरोधी प्रजातियां जैविक जीवनाशी प्रबंधन में सबसे अच्छी बचाव विधि है। जैव विविधिता का रख-रखाव, प्रभावी फसल चक्र, बहु फसल, कीटों के प्राकृतिक वास में बदलाव तथा ट्रैप फसल का प्रयोग भी प्रभावी विधियॉ है जिससे नाशी जीवों की जनसंख्या को नियंत्रित रखा जा सकता है।
* **यांत्रिक विकल्प** - रोग प्रभवित पौधे तथा रोग ग्रस्त भाग को अलग हटाना। अंडा तथा लार्वा समूहों को इकट्ठा करके नष्ट करना, चिडियों के बैठने के स्थान की स्थापना, प्रकाश पिंजरा (Light Traps), चिपचिपी रंगीन पट्टी तथा फैरोमेन ट्रेप्स आदि नाशी जीव नियंत्रण की सबसे अधिक प्रभावशाली विधियां है।
* **जैविक विकल्प** - नाशी जीवों का भक्षण करने वाले जीव-जंतु तथा रोधी प्रजातियां नाशी जीव नियंत्रण में सबसे अधिक प्रभावी सिध्द हुई है। ट्राईकोग्रामा 40-50 हजार अंडे/हेक्टेयर, चैलोनस ब्लेकबर्नी (chelonus blackburni) 15-20 हजार अंडे/हेक्टेयर एपानटेलिस (Apanteles sp.) 15-20 हजार अंडे है तथा क्राईसोपरला (Chrysoperlla) के 5 हजार अंडे/हेक्टेयर बुवाई के 15 दिन बाद तथा नाशी जीवों का भक्षण करने वाले जीव जंतु (Predators) तथा अन्य परजीवी बुवाई के 30 दिन बाद प्रयोग करने से जैविक खेती में नाशी जीव समस्या का नियंत्रण प्रभावशाली ढंग से हो सकता है।

जैविक नाशीजीव नाशको का प्रयोग - ट्राईकोडर्मा विरीडी (Trichoderma viridi) या ट्राईकोडर्मा हारजिएनम (T.Harazianum) या स्यूडोमोनास (Pseudomonas fluorscense) 4 ग्रा./कि. बीज अकेले अथवा संयुक्त रूप से अधिकांश बीज जनित या मृदा रोगों के नियंत्रण में प्रभावी है। बाजार में उपलब्ध बवेरिया वैसीआना (Beauvariva bassiana), मेटारीजियम एनीसोप्लीआई (Metarizium anisopliae) आदि विशेष नाशीजीवी समुदाय का प्रबंधन कर सकते है। बैसिलस बैक्टीरिया के नाशीजीव नाशक कुछ अन्य कीट जातियों के विरूध्द प्रभावी है।

विषाणु जैव कीटनाशक - वैक्यूलोवाइरस (Baculovirus) समूह जैसे ग्रेनूलोसिस वायरस (जी. वी.) (Granulosis viruses) (G.V) तथा न्यूक्लियर पोली हेड्रोसिस वायरस एन.पी.वी. (Nuclear Poly Hedrosis Viruses) (N.P.V.) का प्रयोग हैलीकोवर्पा आर्मीजेरा (Helicoverpa armigera) तथा स्पोडोपटेरा लिटूरा (Spodoptera) (250 लार्वा समकक्ष मात्रा) के नियंत्रण में बहुत प्रभावी है।

वानस्पतिक कीटनाशक - बहुत से वृक्ष कीटनाशी गुणों के कारण जाने जाते है। ऐसे वृक्षों की पत्तियों या बीजों का सत्/अर्क नाशीजीवों के प्रबंधन में प्रयोग किया जा सकता है। अनेक प्रकार के वृक्ष व पौधे इस उद्देश्य से चिन्हित किये गये है। जिनमें नीम सर्वाधिक प्रभावशाली पाया गया है।

नीम (Azadiracta indica) - नीम 200 नाशी जीव कीटों तथा सूत्रकृमियों के प्रबंधन में प्रभावी पाया गया है। ग्रास हौपर, लीफ हौपर, प्लांट हौपर, एफिड, जैसिड, मौथ व इल्ली के लिए नीम अर्क व तेल बहुत प्रभावी है। नीम अर्क बीटल लार्वा, बटर फ्लाई, मौथ व कैटर पिलर जैसे कौक्सिकन बीन बीटल, कोलोरेडो पुटेटो बीटल तथा डाइमंड बैक मोथ के लिए भी बहुत प्रभावी है। नीम उत्पाद ग्रास हौपर, लीफ माइनर, तथा लीफ हौपर जैसे वैरीएगिटिड ग्रास हौपर, धान की हरी पत्ती का हॉपर तथा कपास का जैसिड़ नियंत्रण में भी बहुत प्रभावी है। बीटल, एफिड्स, सफेद मक्खी, मिली बग, स्केल कीट वयस्क बग, गैमोट तथा स्पाइड़र का प्रबंधन भी नीम अर्क द्वारा किया जा सकता है।

कुछ अन्य नाशी जीव प्रबंधन सूत्र

बहुत से जैविक किसान तथा गैर सरकारी संगठनों ने बड़ी संख्या में अग्रणी सूत्र विकसित किये है जो विभिन्न नाशी जीवों के प्रबंधन हेतु प्रयोग किये जाते हैं। यद्यपि इन सूत्रों की वैज्ञानिक रूप में वैधता नहीं है, फिर भी उनका किसानों द्वारा बड़े पैमाने पर प्रयोग किया जाना उनकी उपयोगिता का द्योतक है। किसान इन सूत्रों को प्रयोग करने का प्रयास कर सकते हैं क्योंकि ये बिना क्रय के उनके खेत पर ही तैयार किये जा सकते हैं। कुछ लोकप्रिय सूत्र निम्न प्रकार सूचीबध्द किये गये है :-

* **गौ-मूत्र** - एक लीटर गौ-मूत्र 20 ली. पानी में मिलाकर पर्णीय छिड़काव करने से अनेक रोगाणुओं तथा कीटों के प्रबंधन के साथ-साथ फसल वृध्दि उत्प्रेरक (Growth Promoter) का कार्य भी कर सकता है।

* **सड़ा हुआ छाछ पानी** - मध्य भारत के कुछ भागों में सड़ा हुआ छाछ पानी, सफेद मक्खी एफिड़ आदि के प्रबंधन हेतु भी प्रयोग किया जाता है।

* **दश पर्णी सत्** - 20 कि. नीम पत्ती + 2 कि. निर्गुन्डी पत्ते +2 कि. सर्पगंधा पत्ते + 2 कि. गुडुची पत्ते+ 2 कि. कस्टर्ड एपिल (शरीफा) पत्ते + 2 कि. करंज पत्ते + 2 कि. एरंड पत्ते + 2 कि. कनेर पत्ते + 2 कि. आक पत्ते 2 कि. हरी मिर्च लुगदी + 250 ग्राम लहसुन लुगदी + 5 ली. गौमूत्र + 3 कि. गाय गोबर को 200 ली. पानी में कुचलें और

एक माह तक सड़ने दें। दिन में दो से तीन बार हिलाते रहें। सत् को कुचलने के बाद छानें। सत् छः माह हेतु भंडारित किया जा सकता है तथा एक एकड़ क्षेत्र में स्प्रे हेतु पर्याप्त है।

* **नीम गौमूत्र सत्** - 5 कि. नीम पत्ती पानी में कुचलें। इसमें 5 ली. गौमूत्र तथा 2 कि. गाय का गोबर मिलायें। 24 घंटे तक सड़ने दें। थोड़े-थोड़े अंतराल से हिलायें। सत् को निचोड़कर छाने तथा 100 ली. पानी में पतला करें। एक एकड़ क्षेत्र में पर्णीय छिड़काव हेतु प्रयोग करें। इससे चूसने वाले कीटों तथा मिली बग का नियंत्रण किया जा सकता है।

* **मिश्रित पत्तों का सत्** - (1) तीन कि. नीम पत्ती 10 ली. गौमूत्र में कुचलें। (2) दो कि. कस्टर्ड एपिल पत्ते + 2 कि. पपीता पत्ती + 2 कि. अनार पत्ती + 2 कि. अरंडी पत्ती + 2 कि. अमरूद (Guava) पत्ती को पानी में कुचलें। दोनों मिश्रण को मिलायें। थोड़ी-थोडी देर के अंन्तराल में (5 बार) तब तक उबालें जब तक कि यह घटकर आधा नहीं रह जाये। 24 घंटे रखने के बाद निचोड़कर छाने। यह बोतलों में छः माह तक भंडारित किया जा सकता है। 2-2-5 ली. सत् में 100 ली. पानी मिलाकर यह घोल एक एकड़ हेतु पर्याप्त है। यह रस चूसने वाले तथा तना व फल छेदक कीटों के नियंत्रण में लाभकारी है।

* **मिर्च अदरक का सत्** - 1 कि. बेशरम (ipomea) पत्ती + 500 ग्राम हरी तीखी मिर्च + 500 ग्राम लहसुन + 500 ग्राम नीम पत्ती। सबको 10 ली. गौमूत्र में कुचलें। इसे तब तक उबालें जब तक कि यह घटकर आधा न रह जाये। सत् को निचोड़कर छाने। शीशे या प्लास्टिक की बोतल में भंडारित करें। 2-3 ली. सत् में 100 ली. पानी मिलायें। यह एक एकड़ छिड़काव हेतु पर्याप्त है। यह अर्क पत्ती लपेट कीट, तना, फल तथा फली छेदक के नियंत्रण में लाभकारी है।

* **प्रभावी कीटनाशी सूत्र क्र.**1 . एक तांबे के पात्र में 3 किलो कुचली हुई ताजी नीम की पत्तियां एवं 1 किलो नीम की निबौली का चूर्ण (पाउडर) 10 लीटर गौ मूत्र में मिलाऐं। पात्र को अच्छी तरह से बंद करके 10 दिनों तक सड़ने के लिए रख दें। 10 दिनों बाद इस मिश्रण को तब तक उबालें जब तक कि यह आधा न रह जाये। 500 ग्राम हरी मिर्च कुचलकर एक लीटर पानी में डालकर रात भर के लिए छोड़ दें। एक दूसरे पात्र में 250 ग्राम लहसुन को पानी में डालकर रात भर के लिए छोड़ दें। अगले दिन उबला हुआ मिश्रण, हरी मिर्च का सत् और लहसुन का सत् एक साथ मिला दें। अच्छी तरह से मिलाकर इसे छान लें। यह व्यापक प्रभावी कीटनाशक बन गया है, इसका उपयोग सभी फसलों में विभिन्न प्रकार के कीटों की रोकथाम के लिए कर सकते है। इस कीटनाशक की 250 मि.ली. मात्रा को 15 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

* **प्रभावी कीटनाशी सूत्र क्र.**२ . 5 किलो नीम की निंबौली का चूर्ण (पाउडर) 1 किलो करंज के बीजों का चूर्ण, 5 किलो बारीक कटी बेशरम/बेहया की पत्तियां एवं 5 किलो नीम की बारीक कटी पत्तियां एक 200 लीटर क्षमता वाले ड्रम में डालें। इसमें 10 से 12 लीटर गौ मूत्र डालकर ड्रम को 150 लीटर तक पानी से भर दें। ड्रम को ऊपर से अच्छी तरह बंद

करके 8 से 10 दिनों तक सड़ने के लिए छोड़ दें। 8 दिनों बाद मिश्रण को अच्छी तरह मिला कर आसवित करें। यह आसवित अर्क एक अच्छा कीटनाशक होने के साथ-साथ एक अच्छा वृध्दि कारक भी है। 150 लीटर मिश्रण से प्राप्त अर्क एक एकड़ भूमि के लिए पर्याप्त है। इसे समुचित घोल बनाकर छिड़काव करें। कुछ महीनों तक इसे रखे रहने पर भी इसकी उपयोगिता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता।

जैविक प्रबंधन के कुछ अन्य प्रचलित तरीके एवं नवीन जैविक आदान

१. बायोडायनेमिक कृषि

प्राचीन समय से ही यह धारणा है कि हमारे जीवन के हर पहलू, पर्यावरण व मौसम पर सूर्य, चाँद, सितारों व नक्षत्रों की गति का महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। इसी आधार पर यह भी माना जाता है कि कृषि एवं फसल उत्पादन पर भी इन नक्षत्रों का महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। इन नक्षत्रीय शक्तियों की प्रभाविता को ध्यान में रखकर विभिन्न संस्थाओं द्वारा कुछ जैव सक्रिय उत्पाद (Biodynamic preparations) विकसित किये गये हैं। ये जैव सक्रिय उत्पाद मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने के साथ नाशीजीव प्रबंधन में भी योगदान करते हैं।

जैव सक्रिय पदार्थों के लगातार प्रयोग से मिट्टी की खोई हुई उर्वरा क्षमता पुर्नस्थापित होती है तथा मिट्टी के स्वास्थ्य में उत्तरोत्तर सुधार होता है। कुछ जैव सक्रिय उत्पाद रोगनिरोधी पदार्थों के रूप में कार्य करते हैं और कृषि नाशीजीव के प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। जैव सक्रिय पदार्थों के प्रायोजकों के अनुसार "जैव सक्रिय पदार्थों के प्रयोग से मिट्टी और उसके आसपास के वातावरण में ऐसी प्राकृतिक प्रक्रियाओं की शुरूआत होती है जिससे मिट्टी और उसमें उगने वाले पौधों में नक्षत्रीय शक्तियों को ग्रहण करने और उन शक्तियों को लाभ वाली प्रक्रियाओं में बदलने की क्षमता उत्पन्न होती है।" जैव सक्रिय उत्पाद पौधों का भोजन नहीं हैं वरन् ये पौधों में नक्षत्रीय शक्तियों को ग्रहण करने की क्षमता बढ़ाते हैं। कम्पोस्ट में प्रयुक्त होने वाले जैव सक्रिय उत्पाद कम्पोस्ट उत्प्रेरक या वृद्धिकारक होकर कुछ विशिष्ट जीवाणुओं द्वारा नक्षत्रीय शक्तियों को ग्रहण करने की क्षमता उत्पन्न करते हैं जिससे विभिन्न पोषण तत्व चक्रों का निर्बाध संचालन होता है। संक्षेप में जैव सक्रिय उत्पाद ऐसे जैविक उत्पाद हैं जिनसे नक्षत्रीय शक्तियों को मिट्टी में विभिन्न जैविक प्रक्रियाओं एवं तत्व चक्रों को मजबूत एवं प्रभावी करने के काम में लिया जाता है।

अभी तक कुल मिलाकर नौ प्रकार के जैव सक्रिय उत्पाद विकसित किये गये हैं और उन्हें नुस्खा क्र.500 से 508 तक नाम दिये गये है। इन उत्पादों में नुस्खा क्र.500 (बी.डी.-500) तथा नुस्खा क्र.501 (बी.डी.-501) सर्वाधिक लोकप्रिय है। नुस्खा क्र.502 से 507 (बी.डी.502 से बी.डी.507) कम्पोस्ट उत्पादन में प्रयुक्त किये जाते है। नुस्खा क्र.508 (बी.डी.-508) रोगनिरोधी है और अनेक प्रकार के फफूँद जन्य रोगों की रोकथाम में सहायक है।

बी.डी.-500 (सींग खाद)

भारतीय परम्पराओं एवं मान्यताओं के अनुरूप तथा जैव सक्रिय पदार्थों के प्रणेता रूडोल्फ स्टेनर के अनुसार, एक ओर जहाँ गाय का गोबर अनेक नक्षत्रीय शक्तियों से पूर्ण है वहीं गाय के सींग खोल में नक्षत्रीय शक्तियों को ग्रहण करने की अभूतपूर्व क्षमता है। इस प्रक्रिया में इन दोनों पदार्थों की अभूतपूर्व क्षमता का प्रयोग किया गया है।

उत्पादन विधि

१. **सींग खोल का चयन** :- गाय का सींग किसी मृत गाय के कंकाल से काट कर निकाला जा सकता है। काटने के पश्चात् इसके अन्दर के पदार्थ को खुरच-खुरच कर निकाल दें और धोकर धूप में सुखा लें। ध्यान रहे सूखने के बाद इसमें कोई दुर्गंध नहीं होनी चाहिये। सींग ऐसी गाय का हो जो कि कम से कम 2&3 बार बच्चे जन चुकी हो। सींग खोल में कोई दरार या छेद नहीं होना चाहिये। यदि सींग पर कोई पेन्ट या रंग लगा हो तो उसे केरोसिन से छुडाकर साफ कर लें।

२. **गाय के गोबर का चयन** :- गाय का गोबर ताजा और ऐसी दुधारू गाय का होना चाहिये जिसे हरे पौष्टिक चारे पर पाला जा रहा हो। ध्यान रहे गाय को 15 दिन पूर्व से कोई औषधि या हॉरमोन इत्यादि न दिया गया हो।

३. **गड्ढे की तैयारी** :- किसी खुले स्थान पर उपजाऊ भूमि में लगभग 40 से.मी. गहरा एक गड्ढा खोदें। गड्ढे की लम्बाई व चौडाई आवश्यकतानुसार रखी जा सकती है। गड्ढे में 5 से.मी. मोटी उपरी उपजाऊ सतह की मिट्टी की परत बिछायें और पानी डालकर नम करें।

४. **सींग खोल की भराई** :- एक चौडे मिट्टी के बर्तन में ताजा गोबर को फेंट कर चिकनी लेई (paste) बनायें। इस लेई को धीरे-धीरे सींग खोल में भरें। ध्यान रहे भरते हुए सींग खोल में हवा बिलकुल न रहे। पूरी तरह उपर तक भरे सींग खोलों को गड्ढों में सीधा इस प्रकार खडा करें कि सींग का खुला भाग गड्ढे के पैंदे पर हो और बंद नुकीला भाग आसमान की ओर। बारी बारी से सभी सींग खोल थोडी-थोडी दूरी पर जमा दें। अब गड्ढे को मिट्टी एवं पूरी तरह पकी गाय की गोबर खाद के मिश्रण (25%1) से भर कर बंद कर दें और चारों कोनों पर पहचान के लिये चार डंडे खडे कर दें। समय समय पर पानी का छिडकाव कर मिट्टी को नम बनाये रखें।

५. **सींगों को गाड़ने एवं निकालने का समय** :- भारतीय पंचाँग एवं चन्द्र कैलेन्डर के हिसाब से इन सींगों को क्वार नवरात्र (अक्तूबर-नवम्बर) के समय गाडा जाना चाहिये और चैत्र नवरात्र (मार्च-अप्रेल) में निकाला जाना चाहिये।

६. **सींग खाद का भंडारण** :- उपयुक्त समय पर खोदकर सींगों को निकाल लें और ठकठकाकर खाद को बाहर निकालें। निकालते समय खाद नम होनी चाहिये और उसमें कोई दुर्गंध नहीं होनी चाहिये। इस सींग खाद को मिट्टी के बर्तन में ढ़क कर किसी ठंडे स्थान रख सकते हैं। ध्यान रहे पूरे भंडारण के समय खाद नम बनी रहे और ढक्कन से हवा आती जाती रहे। यदि तापमान अधिक हो तो इस मिट्टी के बर्तन को दो तिहाई मिट्टी में दबा दे और आस पास की मिट्टी को पानी छिड़क कर ठंडा रखें।

७. **प्रयोग** : सींगखाद का प्रयोग सभी प्रकार की फसलों में दो बार किया जाता है, पहली बार बुवाई के एक दिन पहले और दूसरी बार जब फसल 20 दिन की हो जाय। अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिये यह जरूरी है कि इसका प्रयोग पूर्ण चन्द्र दिवसों (पूर्णमासी के आस पास) में किया जाय। अमावस्या या उसके आस पास के दिनों में प्रयोग से इस खाद का प्रभाव पूरा नहीं होगा।

८. **प्रयोग विधि** : 30 ग्राम सींगखाद को 13 लीटर पानी में मिलायें। ध्यान रहे पानी ट्यूबवेल या वर्षा का हो नल का नहीं। इस घोल को हाथ से एक घंटे तक हिलायें। पहले हाथ को एक दिशा मे तेजी से तब तक घुमायें जब तक कि पानी में गहरा भंवर न बन जाय, अब तुरंत हाथ की दिशा उल्टी कर घुमायें। इस प्रकार बारी-2 से घड़ी की दिशा व विपरीत दिशा में

घुमाते रहें। इस घोल को स्प्रेयर की मदद से खेत मे मिट्टी पर स्प्रे करें। यदि स्प्रेयर उपलब्ध न हो तो एक झाड़ू की मदद से मिट्टी पर छिडक दें। इस मिश्रण को बनाने के एक घंटे के अंदर प्रयोग करें। इस मिश्रण का प्रयोग सूर्यास्त के समय करना चाहिये। सींग खाद के प्रयोग से मिट्टी में मित्र सूक्ष्मजीवों की बढोत्तरी होती है, केचुँओं की संख्या बढ़ती है तथा जडों का अच्छा विकास होता है। नक्षत्रीय शक्तियों के कारण पौध बढ़वार अच्छी होती है और भूमि की जैविकीय प्रक्रियाओं मे सुधार होता है।

बी.डी 501 (सींग सिलिका खाद) :

इस नुस्खे में क्वार्टज सिलिका का महीन चूर्ण गाय के सींग खोल मे भरकर गर्मी के मौसम मे लगभग 6 माह तक गाड़कर रखा जाता है इसका प्रयोग फसल पर स्प्रे रूप में किया जाता है तथा इसके प्रयोग से पौधों की प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया में वृद्धि होती है, फलों और दानों की गुणवत्ता में सुधार होता है और कुछ रोग (जैसे मिल्डयू व ब्लाइट) एवं कीटों की भी रोकथाम होती है।

उत्पादन विधि

१. **सिलिका चूर्ण बनाना** : क्वार्टज सिलिका एक प्रकार का प्राकृतिक खनिज है जो कि चमकदार पत्थरों के रूप में मिलता हैं । सिलिका पत्थरों को तोड़कर छोटे -छोटे टुकड़े करें, अन्य पत्थर मिट्टी इत्यादि अलग कर निकाल दें। साफ टुकडों को पल्वराइजर से महीन चूर्ण बना लें। यदि पल्वराइजर उपलब्ध न हो तो कूटकर महीन चूर्ण बनायें और पतले कपडे से छान लें। सिलिका पाउडर बिल्कुल टैल्कम पाऊडर जितना महीन (250-300 मेश) होना चाहिये।

२. **सींग खोलों को भरना** : सिलिका पाऊडर को ताजा ट्यूबवैल या वर्षा जल के साथ मिलाकर गूंध लें और एक गाढी लुग्दी बना लें। इस लुग्दी को धीरे-2 सींगों में भरें। ध्यान रहे सींग मे कोई भी खाली जगह या हवा नहीं रहनी चाहिये। सींगों को लगभग दो घंटे के लिये सीधा खड़ा कर छोड़ दें और बीच-2 मे थोडा-2 ठकठकाते रहें। लगभग दो घंटे में फालतू पानी उपर आ जायेगा उसे निथार कर अलग कर दें और खाली जगह को सिलिका लुग्दी से भर दें। फिर जैसा कि बी.डी. - 500 मे बताया है के अनुसार गड्ढे में गाड दें और मिट्टी से ढ़क दें।

३. **गाडने और निकालने का समय** : बी.डी. -500 के विपरीत सिलिका सींगों को चैत्र नवरात्र के समय गाड़ा जाता है और क्वार नवरात्र के समय निकाला जाता है।

४. **सिलिका खाद निकालना व भंडारण** : उपयुक्त समय पर सींगों को खोदकर निकालें और सिलिका को इकठ्ठा करें। किसी साफ पक्के फर्श या पोलीथीन पर फैलाकर धूप मे सुखा लें। इस सूखे चूर्ण को काँच की बोतलों में या चीनी मिट्टी के बर्तनों मे भरकर रखा जा सकता है। इन बोतलों या बर्तनों को खुले हवादार तथा रोशनी से भरपूर स्थान पर रखना चाहिये। सींग सिलिका को कभी भी छायादार, ठंडे या अंधेरे स्थान पर नहीं रखना चाहिये।

५. **प्रयोग विधि** : एक एकड़ के लिये केवल 1 ग्राम बी.डी 501 पर्याप्त है। एक ग्राम सींग सिलिका को 13 लिटर पानी में मिलायें और जैसा कि बी.डी-500 नुस्खें मे बताया है के अनुसार एक घंटे तक बारी-2 से घड़ी की दिशा व विपरीत दिशा मे तेजी से घुमाते रहें । इस घोल को अच्छे स्प्रेयर की मदद से खेत के उपर हवा में छिडकें। स्प्रे करते समय सबसे महीन वाला नोजल लगायें और नोजल को सिर के उपर पकड़कर आकाश की दिशा मे रखते हुऐ स्प्रे करें। इस प्रकार सिलिका के महीन कण समान रूप से चारों ओर फसल की पत्तियों पर फैल जायेंगे। सींग सिलिका का प्रयोग सुबह सूर्योदय के बाद करना चाहिये। इसे सभी प्रकार की फसलों में

तीन बार प्रयोग किया जाता है पहली बार जब फसल मे ३-४ पत्तियाँ हो व बाद मे 30 दिन के अंतर पर दो बार और।

अन्य जैव सक्रिय उत्पाद

उपरोक्त दो नुस्खों के अलावा क्र. 502 से 508 तक के और जैव सक्रिय उत्पाद विकसित किये गये है। परंतु उनको बनाने की विधियाँ बहुत विचित्र हैं और भारतीय पंरम्पराओं एवं मान्यताओं के अनुरूप नहीं हैं। इस कारण ये नुस्खे भारत में लोकप्रिय नहीं हैं। इन नुस्खों का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है। ये नुस्खे बाजार में भी उपलब्ध हैं तथा कुछ संस्थाओं द्वारा भारत में ही बनाये जा रहे है।

बी. डी. 502 - नमीयुक्त यारौ (Achillea millefolium) के फूलों को बसंत ऋतु में हिरन के ब्लैडर में रखते हैं, तत्पश्चात् इस ब्लैडर को सूर्य की रोशनी में लटकाया जाता है तथा इसको पूरी शरद ऋतु में अच्छी नमीयुक्त मिट्टी में दबाकर रखते हैं और बसन्त ऋतु में मिट्टी से निकालते हैं तथा कम्पोस्ट में मिलाकर खेत में डालते हैं। यह मिश्रण कम्पोस्ट को पोटाश व सल्फर के संचालन में मद्द करता है।

बी. डी. 503 - चैमोमिली (Matricria chamomilla) के फूलों को ग्रीष्म ऋतु में इक्कट्ठा करके थोड़ा पानी डालकर एवं चामोमिली चाय को मिलाकर ताजा कटी हुई गाय की ऑत में डालकर इसके छोटे-छोटे टुकड़े किये जाते हैं तथा इन टुकड़ों को अच्छी ह्यूमस वाली मिट्टी में वर्षा के मौसम में दबाया जाता है। दबाने के स्थान का चयन बर्फ पिघलने पर पानी के बहाव के नजदीक होना चाहिए। इस तरह से प्राप्त मिश्रण कम्पोस्ट में कैल्शियम निर्धारण में मद्द करता है।

बी. डी. 504 - स्टींगगिंग नेटल (Urtica dioica) को पीट मौस घास में लपेटकर एक वर्ष तक मिट्टी में दबाया जाता है तत्पश्चात् इसको कम्पोस्ट में मिलाया जाता है। यह कम्पोस्ट के ह्युमिफिकेशन मे मद्द करता है।

बी. डी. 505 - ओक वृक्ष की छाल को मृत बकरी या भेंड़ के सिर वाले हिस्से में भरकर वर्षा के मौसम में किसी ऐसी जगह दबाया जाता है जहॉ पानी का धीरे-धीरे रिसाव होता हो। इस मिश्रण को बसन्त ऋतु में मिट्टी से निकालकर कम्पोस्ट में मिलाया जाता है जिससे कम्पोस्ट में कैल्शियम वृद्धि के साथ-साथ पौधों की रोग रोधक क्षमता भी बढ़ती है।

बी. डी. 506 - डैन्डेलियन वृक्ष के सूखे फूलों को बसंत ऋतु में इक्कट्ठा कर तथा थोड़ा गीला करके मरी हुई गाय की ऑत के आस-पास वाली झिल्ली में डालकर एक वर्ष तक मिट्टी में दबाया जाता है यह मिश्रण कम्पोस्ट को सिलिका एवं पोटाश के बीच होने वाली प्रक्रिया को तेज कर पोटैशियम आयन को मिट्टी में छोंड़ने में मद्द करता है।

बी. डी. 507 - वैलेरियन (Valeriana officinalis) के फूलों के रस को वर्षा जल में मिलाकर कम्पोस्ट पिट पर छिड़काव से कम्पोस्ट की फास्फोरस घुलनशीलता में वृद्धि होती है।

प्रायः यह देखा गया है कि बी.डी. मिश्रण को बनाना काफी जटिल है लेकिन एक बार बनाने के पश्चात् इन मिश्रणों को कांच की बोतलों में अधिक समय तक रखा जा सकता है। एक चम्मच बी.डी. कम्पोस्ट मिश्रण (502-507) तीन घन मीटर कम्पोस्ट पिट के लिए पर्याप्त है। एक चाय का चम्मच बी.डी मिश्रण (502-506) कम्पोस्ट पिट में 30-40 से.मी. गहरा छेद कर डाला जा सकता है। बी.डी. मिश्रण 507 को पानी में मिलाकर कम्पोस्ट पिट पर छिड़काव करना चाहिए।

बी. डी. 508 - ताजा कटे हुए होर्सटेल पौधे (Equisetum auriense) को पानी में डालकर 20 मिनट तक उबाला जाता है तथा इसको छानकर कॉच की बोतलों में भरकर अधिक समय के लिए रखा जा सकता है। यह घोल फफूँदी नाशक का काम करता है।

काउ पैट पिट (C.P.P.) - ईंटों का 90x60x30 से.मी. का गढ्ढ़ा बनाया जाता है जिसको नीचे से पक्का नहीं किया जाता, इसमें 60 कि.ग्रा. ताजा गाय का गोबर, 200 ग्राम अण्डे के छिलके एवं 300 ग्राम ग्रेनाईट डस्ट को अच्छी तरह मिलाकर 12 से.मी. तक भरा जाता है। गढ्ढ़ा भरकर समतल किया जाता है तथा इसमें पांच छेद किये जाते हैं जिनमें बी.डी. मिश्रण 502 से 506, 3 ग्राम प्रति सूत्र की दर से प्रत्येक छेद में डाला जाता है। बी.डी. मिश्रण 507 को पानी में मिलाकर पिट पर छिड़काव किया जाता है तथा टाट की बोरियों से इसको ढ़क दिया जाता है। चार सप्ताह पश्चात् वायु प्रवाह हेतु इसको उलटा पलटा जाता है तथा दोबारा से ढ़क दिया जाता है। इसी प्रकार एक सप्ताह बाद फिर हल्की खुदाई करें, C.P.P. लगभग 12 सप्ताह में बनकर तैयार हो जाता है।

C.P.P. को कई तरह से प्रयोग किया जा सकता है। 100 ग्राम C.P.P. प्रति एकड़ के हिसाब से बी. डी. 500 या 501 में मिलाकर स्प्रे किया जा सकता है। C.P.P. को 2 कि.ग्रा. /एकड़ की दर से कम्पोस्ट में मिलाकर भी प्रयोग किया जा सकता है। C.P.P. को 5 कि.ग्रा. /एकड़ की दर से फसल पर हर 15 दिन में छिड़काव किया जा सकता है। C.P.P. को फल वृक्षों के तनों पर पेस्ट के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है। C.P.P. को बायो डाईनेमिक कम्पोस्ट में बी.डी. 502-507 की जगह भी प्रयोग किया जा सकता है।

२. ऋषी कृषि - वेदों से प्राप्त जानकारी के अनुसार ऋषी कृषि का प्रचलन महाराष्ट्र एवं मध्यप्रदेश के किसानों द्वारा किया गया था । इस विधि में खेतों से प्राप्त स्त्रोतों जैसे कम्पोस्ट, गाय का गोबर, हरी पत्ती की खाद एवं फसलों के अवशेषों (जिनकी मल्चिंग की जा सके) को अमृत पानी सूत्र के साथ प्रयोग कर मिट्टी को समृद्ध बनाया जाता है। 15 किलो शुध्द जीवंत मिट्टी जिसे बरगद की तली से एकत्र किया गया हो और जो जड़ों के आस-पास की हो, को एक एकड़ जमीन पर फैलाकर 200 लीटर अमृतपानी सूत्र का छिड़काव करने से मृदा जीवंत व समृद्ध हो जाती है।

अमृतपानी बनाने के लिए 250 ग्राम घी, 10 किलो गाय का ताजा गोबर एवं 500 ग्राम शहद को मिलाकर 200 लीटर पानी में घोला जाता है। इसका उपयोग बीज उपचार (बीज संस्कार), मृदा को समृध्द बनाने के लिए (भूमि संस्कार) एवं पौधों पर छिड़काव (पादप संस्कार) हेतु किया जाता था । मृदा उपचार हेतु इसका उपयोग सिंचाई के माध्यम से किया जाता था । इस पध्दति के अनेक प्रदर्शन बड़े स्तर पर विभिन्न फसलों, फलों, सब्जियों, अनाज, दालों, तेलीय बीजों, गन्ने की फसालों एवं कपास आदि पर किया गया है और यह प्रक्रिया प्रभावी पायी गयी है ।

३. पंचगव्य कृषि - पंचगव्य एक विशिष्ट जैव समृध्दशाली सूत्र है इसे गाय के पांच उत्पादों जैसे गोबर, गौमूत्र, दूध, दही एवं घी से मिलाकर तैयार किया जाता है । डॉ नटराजन, चिकित्सा व्यवसायी एवं वैज्ञानिक, तामिलनाडू कृषि विश्वविद्यालय द्वारा उपरोक्त पंचगव्य बनाने की क्रिया में बागवानी एवं कृषि की मांग के अनुरूप परिवर्तन किया गया है। पंचगव्य बनाने व निर्माण के लिए उपयोगी तत्वों का विवरण पूर्व के पृष्ठों में दिया गया है । पंचगव्य बनाने की लागत लगभग रू. 25 से 30 रू. प्रति लीटर आती है ।

पंचगव्य में बहुउपयोगी सूक्ष्मजीव जैसे फफूंद, बैक्टीरिया, एक्टिनोमाइसिटीस एवं अनेकों सूक्ष्म पुष्टिकारक जीवाणु होते हैं । यह पंचगव्य मृदा के लिए बलवर्धक का कार्य करता है, पौधों को प्रबल करता है एवं ताकत पहुंचाता है और साथ ही गुणवत्तायुक्त उत्पादन प्राप्त करने में सहायक है । पंचगव्य में उपस्थित सूक्ष्मजीवों की संख्या निम्नानुसार पाई गई :-

कुल फफूंदी	-	38,800 प्रति मि.ली.
कुल बैक्टीरिया	-	1,880,000 प्रति मि.ली.
लैक्टोबेसिलस	-	2,260, 000 प्रति मि.ली.
कुल एनेरोबिक जीवाणु	-	10,000 प्रति मि.ली.
अम्ल उत्पादन जीवाणु	-	360 प्रति मि.ली.
मिथेन उत्पादक जीवाणु	-	250 प्रति मि.ली.

जैविक एवं रासायनिक अध्ययनों से ज्ञात हुआ कि पंचगव्य में पौधों की अच्छी बढवार हेतु आवश्यक लगभग सभी सूक्ष्ममात्रिक तत्व तथा हार्मोन (IAA, GA) प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं । किण्वनकारी सूक्ष्म जीव जैसे यीस्ट (खमीर) एवं लैक्टोबेसिलस की अधिकता से मृदा की जैविक प्रक्रियाओं में तेजी आती है और अनेक लाभदायी सूक्ष्मजीवों की संख्या में बढ़ोत्तरी होती है। 3 से 4 प्रतिशत का पंचगव्य घोल पर्णीय छिड़काव हेतु पर्याप्त होता है । 4 से 5 बार छिड़काव करने से अच्छी पैदावार और उत्पादकता सुनिश्चित की जा सकती है । छिड़काव हेतु निम्न पद्वति अपनाई जा सकती है। (अ) दो छिड़काव फूल आने से पहले 15 दिनों के अंतराल पर (ब) दो छिड़काव फूल से फल/फल्लियां बनते समय 10 दिनों के अंतराल में (स) एक छिड़काव फल/फलियां परिपक्व होने पर । पंचगव्य का उपयोग करने पर कई फसलों में उत्तम प्रभाव देखने को मिले हैं जैसे - बागवानी वाली फसलें, आम, अमरूद, नीबू, केला, मसाले वाली हल्दी, जैसमिन फूल, दवा वाले पौधे जैसे कोलियस, अश्वगंधा, सब्जियॉं जैसे ककड़ी, पालक, भिंडी, मूली एवं अनाज वाली फसलें जैसे मक्का, हरा चना एवं सूरजमुखी । पंचगव्य से गोल सूत्रकृमि की समस्या को एवं कठुवा रोगों को कम किया जा सकता है एवं मृदा में लगातार प्रयोग से गोलकृमियों की संख्या में भी कमी

आती है । पंचगव्य के छिड़काव से पत्तों की ऊपरी सतह पर एक तेलीय परत सी चढ़ जाती है जिससे जल उत्सर्जन में कमी होने से जल का ह्रास कम से कम होता है ।

४. **प्राकृतिक खेती** - प्राकृतिक खेती में खेत पर ही उपलब्ध जैविक संसाधनों के अधिकाधिक उपयोग पर बल दिया जाता तथा मृदा की जैविक प्रक्रियाओं को सुचारू रूप से चलाने के लिए जीवामृत का उपयोग किया जाता है । बीज एवं जड़ोपचार हेतु बीजामृत का उपयोग एवं मृदा उपचार हेतु जीवामृत का प्रयोग इस प्रक्रिया के मुख्य अवयव हैं । बीजामृत एवं जीवामृत बनाने की विधि एवं प्रयोग विधि पूर्व पाठों में दी गई है।

जेवामृत में अनेकों लाभदायी सूक्ष्मजीव पाये जाते हैं । जैविक केन्द्र बैंगलोर के अध्ययन के आधार पर जीवामृत में निम्नलिखित सूक्ष्मजीव बहुतायत में उपलब्ध होते है :-

*	ऐजोसपाइरिलम	2×10^6
*	पी.एस.एम.	2×10^6
*	स्यूडोमोनास	2×10^2
*	ट्राइकोडर्मा	2×10^6
*	खमीर एवं मोल्ड	2×10^7

एक एकड़ के लिए 200 लीटर जीवामृत की आवश्यकता होती है । इसका उपयोग सिंचाई जल द्वारा, ड्रिप सिंचाई या स्प्रिंकलर द्वारा करना चाहिये, इसे मल्च के ऊपर छिड़ककर या पेड़ों के नीचे कुण्ड बनाकर भी प्रयोग किया जा सकता है ।

5- नैट्युको खेती - नैट्युको खेती पारिस्थितिकी तंत्र के सभी अवयवों व उपलब्ध संसाधनों के बीच सामंजस्य कर उनके भरपूर दोहन के सिद्धांत पर आधारित है। यह विधा दार्शनिक एवं व्यवहारिक पद्वति में जैविक एवं प्राकृतिक खेती से बिल्कुल अलग है तथा रसायन आधारित आदानों के प्रयोग के स्थान पर इस विधा में सूर्य प्रकाश के अधिकाधिक प्रयोग तथा वैज्ञानिक तकनीक से स्थानीय संसाधनों के बेहतर प्रबंधन पर जोर दिया जाता है। इस विधा के सफल संचालन हेतु आवश्यक है कि पहले हम ली जाने वाली फसलों की वातावरण व पोषण आवश्यकताएं, स्थानीय मिट्टी की उर्वरता तथा पौधें-पर्यावरण-भूमि के बीच संबंधों की महत्ता व कैसे उनका उपयुक्त प्रबंधन किया जा सके इसे अच्छी तरह समझ लें। नेट्यूको खेती के प्रमुख चरण निम्नानुसार हैं:-

विज्ञान का सरलीकरण - प्रयोग परिवार द्वारा लगातार प्रयोगों से यह साबित किया गया है कि विज्ञान के कठिनतम पहलू भी साधारण भाषा में किसानों तक पहुँचाये जा सकते हैं और किसान उसका उचित उपयोग भी कर सकते हैं। खेती में उत्तरोत्तर विकास के लिये ऐसी बौद्विक क्रांति की आवश्यकता है जिसमें किसान समान रूप से भागीदार हों। इस तकनीकी साक्षरता प्रक्रिया से मृदा एवं जल प्रबंधन, पर्ण छत्र फैलाव, सूर्य ऊर्जा के भरपूर दोहन तथा स्थानीय संसाधन के उपयुक्त प्रबंधन व खेती की सभी अवयवों के बीच समन्वय स्थापित कर उच्चतम् उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है और सबके लिये भरपूरता का लक्ष्य हासिल किया जा सकता है।

नैट्युको खेती विज्ञान को समझना -

- नैटुको खेती पध्दति प्राकृतिक संसाधन आधारित होने के बावजूद प्राकृतिक खेती और जैविक खेती से अलग है ।

- प्राकृतिक खेती में प्रकृति अनुभव एवं विवेक को आधार बनाकर व प्रकृति के सहयोग की अपेक्षा कर खेती की जाती है। जबकि नेट्यूको खेती वैज्ञानिक ज्ञान के आधार पर प्रकृति को अधिक से अधिक जानने और प्रयोगों द्वारा उसके संवर्धन व उपयुक्त प्रयोग पर आधारित है। यह उत्तरोत्तर समृद्ध होने वाली ऐसी ज्ञान गंगा है जिससे मानव व पर्यावरण के बीच परस्पर सहभागिता व सम्मान को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। नेट्यूको खेती विज्ञान आज की रसायन आदान आधारित खेती से बिल्कुल अलग है और दोनो के बीच कोई समानता नहीं है। नेट्यूको खेती इस अवधारणा पर आधारित है कि प्रकृति में उपलब्ध असीमित संसाधन व सूर्य ऊर्जा को यदि मानव ज्ञान व श्रम से परिपोषित किया जाये तो सबके लिये भरपूर उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।
- इसके लिए यह आवश्यक है कि तार्किक ज्ञान द्वारा यह सुनिश्चित किया जाये कि मिट्टी की उर्वरता अक्षुण्ण रखने के लिये कैसे हरियाली बनाकर रखी जाये तथा कैसे स्थानीय संसाधनों व जैव अंश का पुर्नचक्रीकरण कर उनकी अनवरत उपलब्धता बनी रहे।
- इस विधा द्वारा पौध ज्यामिती, फसल बढ़वार, पर्णछत्र फैलाव प्रबंधन तथा सूर्य ऊर्जा के बीच समन्वय स्थापित कर उच्चतम उत्पादन गणितीय माप के साथ प्राप्त किया जा सकता है।
- इस विधा के प्रणेताओं का मानना है कि आज की मुद्रा बाजार प्रणाली निकट भविष्य में ऐसी नई पर्यावरण आधारित आर्थिक प्रणाली में बदल जायेगी जिसमें ऊर्जा बाजार प्रबंधन एक महत्वपूर्ण पहलू होगा।

नेट्यूको खेती के प्रमुख चरण-

नेट्यूकको खेती बाजार आधारित आदानों पर निर्भरता खत्म कर ऐसी प्रक्रिया स्थापित करती है जो अधिकाधिक उत्पादन कर स्थानीय संसााधनों का संवर्धन कर सके। इस विधा के तीन प्रमुख अंग हैं:

(अ) मृदा - उपयुक्त ऊर्जा श्रंखला स्थापित कर जैविक अवशेषों के पुर्नचक्रण से मृदा की समृध्दता को बनाये रखना ।

(ब) जड़े - पोषक तत्वों के प्रभावी अवशोषण हेतु श्वेत पुष्टिकारक जड़ क्षेत्रों का विकास एवं रख-रखाव।

(स) पर्णछत्र - (पत्तियों के चारों ओर का क्षेत्र) - सौर ऊर्जा दोहन हेतु पर्ण छत्र फैलाव का प्रबंधन करना जिससे अधिकाधिक प्रकाश संश्लेषण सुनिश्चित किया जा सके ।

नेट्यूको खेती के मूलभूत सिध्दांत -

सौर ऊर्जा का दोहन - प्रत्येक जैविक प्रक्रिया के लिए ऊर्जा आवश्यक है और सौर्य ऊर्जा इसका एकमात्र स्त्रोत है । निशुल्क सौर ऊर्जा एक प्राकृतिक वरदान है अतः इसके दोहन हेतु हर समय हर एक वर्ग फुट क्षेत्र पर हरसंभव प्रयास करने आवश्यक है।। सौर ऊर्जा का दोहन न कर पाने का अर्थ है ऊर्जा सुअवसरों का ह्रास। सौर ऊर्जा के दोहन हेतु प्रकाश संश्लेषण एक प्रमुख प्रक्रिया है और इस विधा में सर्वाधिक प्रकाश संश्लेषण सुनिश्चित करना उच्चतम प्राथमिकता है। यद्यपि अनुवांशिकी आधार पर प्रकाश संश्लेषण की क्षमता लगभग 1-5 से 2-5 प्रतिशत तक होती है, परंतु पर्ण छत्र प्रबंधन से पत्यिों का फैलाव बढ़ाकर व अनेक स्तरों पर पर्ण फैलाव कर प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया को बढ़ाया जा सकता है और सौर ऊर्जा का अधिकाधिक दोहन किया जा सकता है।

पौधे की जीवनकाल की पांच अवस्थायें - प्रत्येक पौधों को अपने जीवनकाल में पांच अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है ये हैं:- (1) शैशव अवस्था (2) किशोरावस्था (3) यौवनावस्था (4) परिपक्व अवस्था तथा (5) वृध्दावस्था। यह सभी अवस्थायें लगभग समान अंतराल की होती हैं और इन अवस्थाओं में समय-समय पर मानवीय हस्तक्षेप व संसाधनों के उपयुक्त समय पर उपयुक्त मात्राा में प्रयोग प्रबंधन किया जाता है। उदाहरणार्थ जब पौधे वृद्ध हो रहे हों और मृत्यु की ओर अग्रसर हों उन्हें किसी भी पोषण की आवश्यकता नहीं होती है। सामन्यतः पौधों को मौसम काल के आधार पर भी वर्गीकृत किया जा सकता है जैसे कम जीवनकाल (90 से 130 दिन) मध्यम जीवनकाल (5 से 8 माह) या बारहमासी दीर्घायु पौधे । लघु जीवनकाल वाले पौधों की पॉचों अवस्थायें चूँकि बहुत कम समय की होती हैं अतः उनका प्रबंधन बहुत सोच समझकर करना चाहिये। उदाहरणार्थ यदि इन फसलों में प्रभावी जड़ों का विकास यदि 15 से 20 दिनों में (20% जीवनकाल) नहीं सुनिश्चित किया जाये तो बाहरी आदानों की कोई भी मात्रा प्रभावी नहीं होगी। पत्तियां और टहनियां भी अपने जीवनकाल में विभिन्न अवस्थाओं को दर्शाती है । पीली, पुरानी पत्तियां केवल गिरती है और इन्हें नया नहीं किया जा सकता । पुरानी टहनियां भी शीघ्र ही मृत काष्ठ का रूप ले लेती हैं । अतः उपयुक्त समय पर पुरानी पत्तियों को हटाना व नई पत्तियों को बढ़ने देना जैसे मानव हस्तक्षेप बहुत आवश्यक हैं।

जड़ विकास माध्यम - समान्यतः यह माध्यम मृदा है परंतु फिर भी इस की कमी या इसके बिना भी जलीय स्थिति (Hydroponics) में यह संभव है ।

माध्यमों का मुख्य उद्देश्य है -

- पौधों को सहारा और स्थिरता देना एवं वायवीय जड़ों और भोजन प्रदान करने वाली जड़ों का विकास सुनिश्चित करना ।
- भोजन प्रदान करने वाली जड़ों तक पोषक तत्वों को पहुंचाना।
- पौधों की जड़ों को नमी या आर्द्रता देना ।
- जड़ों हेतु वॉछित वायु संचरण सुनिश्चित करना।
- पौध जड़ों के अलावा मिट्टी में अनेक प्रकार के जीव जंतु भी पलते हैं इनमें प्रमुख हैं सूक्ष्म जीव, जीवाणु तथा केंचुऐ। ये सभी जीव भूमि की उर्वरता का अभिन्न अंग हैं और अपनी जैविक क्रियाओं से विभिन्न पोषक तत्वों की उपलब्धता सुनिश्चित करते हैं तथा

पौधों को विभिन्न रूपों में लाभान्वित करते हैं। मानव हस्तक्षेप द्वारा अच्छी मृदा का निर्माण कर इन जीवों की क्षमता बढाई जा सकती है।

पौधे स्वंय अपना भोजन बनाते है - स्वपोषी होने के कारण पौधे अपना भोजन स्वंय बना सकते हैं। प्रकाश-संश्लेषण प्रक्रिया द्वारा पानी एवं कार्बनडाइऑक्साइड गैसें शर्करा (ग्लूकोस) के रूप में परिवर्तित होते है जो बाद में दूसरे अन्य रूपों जैसे शर्करा, लिगनिन, वसा आदि के रूप में परिवर्तित हो जाते है । प्रकाश संश्लेषण द्वारा पौधे एक सूर्य दिवस में 8 से 10 घंटे के समय में से 3 से 4 ग्राम शुष्क द्रव्यमान प्रति वर्ग फुट की दर से तैयार करते है । इनमें से (i) एक ग्राम पौधे के उपापचय में (ii) एक ग्राम पौधे का धड़, जड़, तने, पत्तियां आदि के विकास में एवं (iii) एक ग्राम या तो संग्रह करने में या फलों के उत्पादन में उपयोग होता है । यह जानना अत्यंत उपयोगी और शिक्षा प्रद है कि भोजन/ऊर्जा का संग्रहण कहां और किस समय होता है और इसके उपयोग का समुचित समय कौन सा है । एन्जाइम्स और हार्मोन्स (जिब्रालिक, एसिड, इंडोल एसिटिक एसिड) के अभाव में ऐसी अवस्था आ सकती है, जिसमें पौधों की बढ़वार तो होगी परंतु फलों का उत्पादन कम हो सकता है । अतः पौध प्रक्रियाओं की उपयुक्त जानकारी व उपयुक्त समय पर आवश्यक हस्तक्षेप अति आवश्यक है।

पादप जैव रसायन - उपापचय हेतु हार्मोन्स संदेशवाहक का एवं एन्जाइम्स उत्प्रेरक का कार्य करते हैं, अतः इनका अध्ययन पादप कार्यिकी को जानने तथा कैसे उन प्रक्रियाओं को अधिक उत्पादन हेतु प्रभावित किया जा सकता है जानना अत्यंत आवश्यक है ।

एक परिवार हेतु 1000 वर्ग मीटर भूमि पर्याप्त है

एक परिवार की आवश्यकता 1000 वर्गमीटर में पूरी की जा सकती - 10 गुन्था (एक गुन्था = 1000 वर्गफुट) में ऐसा सूक्ष्म वातावरण बनाना संभव है, जो कि एक परिवार के सम्मानीय रहन-सहन की आवश्यकताओं को पूरा करता हो ।

सीमित जल आपूर्ति - एक दिन में 1000 लीटर जल आपूर्ति पाना एक परिवार का अधिकार है । प्रयोग परिवार के परीक्षणों से सिद्ध हुआ है, कि केवल इस एक बाह्य आदान के साथ स्थानीय परिस्थितियों में स्थानीय स्रोतों से एक परिवार की खुशहाली बनाई जा सकती है। इस जल के साथ प्रयोग परिवार पद्धति से अपने आस-पास के आदानों का उपयोग कर उन्नति की जा सकती है।

नैट्युको सिध्दांत को प्रयोग परिवार पध्दति के साथ लागू करना -

(अ) मृदा प्रबंधन - नैटुको खेती के पहले चरण में आस-पास के संसाधानों से नर्सरी मृदा को विकसित किया जाता है । नर्सरी मृदा में 50 प्रतिशत मात्रा जैविक अवशेषों की व 50 प्रतिशत खनिज तत्वयुक्त ऊपरी मृदा परत की होती है । जैविक अवशेष नर्सरी मृदा का जैविक भाग तैयार करते है और मृदा की ऊपरी सतह अजैविक है । स्वस्थ नर्सरी मृदा सफलतापूर्वक पौधों को पानी व पोषक तत्व प्रदान करने में सक्षम है । उच्च कोटि की नर्सरी मृदा बनाने के लिए यह आवश्यक है कि समय-समय पर मृदा में जैविक अवशेषों को डाला जाये । अच्छी प्रकार से तैयार जैविक कम्पोस्ट वाली नर्सरी मृदा ह्यूमस कहलाती है तथा इसके प्रमुख अवयव लिग्नो प्रोटीन होते हैं । यह मृदा काली, हल्की एवं सहज भुरभुरा पदार्थ युक्त होती है जो आसानी से टुकड़ों या कणों में परिवर्तित हो जाते है । इसमें अच्छी जल

संग्रहण क्षमता (अपने भार से दुगना पानी समाहित करने की) होती है । इस मृदा को यदि एक लीटर आयतन में मापा जाए तो इसका भार 400 ग्राम ही होगा। इसमें एक विशिष्ट प्रकार की चमक होती है और इसमें मृत सूक्ष्म जीवों की कई परतें देखी जा सकती हैं।

(ब) सौर ऊर्जा का दोहन - यह सर्वविदित है कि संपूर्ण खाद्य श्रंखला प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सौर ऊर्जा पर निर्भर है। सौर ऊर्जा का हरे पौधों द्वारा जिस विधि से संग्रहण होता है वह क्रिया प्रकाश-संश्लेषण कहलाती है । तीव्र सूर्य प्रकाश वाले दिनों में पृथ्वी के एक वर्ग मीटर क्षेत्र में 144000 किलो कैलोरी ऊर्जा उपलब्ध होती है, परंतु इस ऊर्जा का बहुत छोटा भाग ही सीधे रूप में पौधों द्वारा संग्रहित होता है । नैटुको संस्कृति में पौधों द्वारा सौर्यउर्जा की संग्रहण क्षमता को बढ़ाने पर बल दिया गया है। उपयुक्त सूर्य ऊर्जा संग्रहण हेतु तीन बातों को समझना आवश्यक है। इनमें सबसे पहला पहलू है पर्ण छत्र का फैलाव व उसका व्यवस्थापन, दूसरा यह सुनिश्चित करना कि वयस्क व प्रकाश संश्लेषण क्रियाशील पत्तियॉं सर्वाधिक हो तथा तीसरा यह कि उत्पादित भोजन संग्रहण हेतु आवश्यक तंत्र या अंग पौधों में उपलब्ध हों।

पर्ण छत्र क्रमांक - पत्तियों को तीन के गुणांक में एक वर्गफुट क्षेत्र में रखें। यदि एक वर्गफुट क्षेत्र में तीन तक पत्तियाँ समावेशित हों तो उस पौधे का पर्ण छत्र क्रमांक ''एक'' होगा। इसी प्रकार यदि किसी पौधे की ६ पत्तियाँ एक वर्गफुट में आये तो उसका क्रमांक ''दो'', 9 पत्तियाँ प्रति वर्गफुट तो उसका क्रमांक ''तीन'' होगा। साधारणतया पौधों का पर्ण छत्र क्रमांक 5 से 10 के बीच होता है। सूर्य प्रकाश के पूर्ण प्रयोग के लिये यह जानना जरूरी है कि उस पौधे के पर्ण छत्र का फैलाव कितना हो। पर्ण छत्र क्रमांक को पौध क्षेत्रफल से गुणा करने पर जो संख्या आये वह उस पौधे के पर्ण छत्र फैलाव का क्षेत्रफल होगा। उदाहरणार्थ यदि एक पौधे का कुल फैलाव क्षेत्रफल आधा वर्गफुट है और उसका पर्ण छत्र क्रमांक 5 है तो उपयुक्त सूर्य प्रकाश उपयोग के लिये उसके पर्ण छत्र का कुल फैलाव 0-5 x 5 = 2.5 वर्गफुट होना चाहिये।

अधिकतम सौर ऊर्जा स्थिरीकरण - प्रयोग परिवार के अध्ययन के आधार पर सौर ऊर्जा के दोहन हेतु निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्याान देना आवश्यक है -

(i) सौर ऊर्जा के प्रभावी दोहन हेतु आवश्यक है पर्ण छत्र क्रमांक (जो कि सामान्यतः 5 से 10 होता है) तालिका के आधार पर प्रति वर्गफुट पौधों की संख्या रखी जाय । यदि उस फसल के पौधों का पर्ण छत्र क्रमांक 5 है तो आवश्यक है, कि एक वर्गफुट क्षेत्रफल में पौधों की पत्तियों का फैलाव 5 वर्गफुट होना चाहिये।

(ii) प्रत्येक पौधे को बढ़ने के लिए एक निश्चित क्षेत्र की आवश्यकत होती है। इसे पर्ण छत्र क्रमांक तालिका के आधार पर, गणना कर जान सकते है । उदाहरणार्थ - यदि एक पौधे का कुल फैलाव क्षेत्रफल आधा वर्गफुट है और उसका पर्ण छत्र क्रमांक 5 है तो उपयुक्त सूर्य प्रकाश उपयोग के लिये उसके पर्ण छत्र का कुल फैलाव 0-5 x 5 = 2.5 वर्गफुट होना चाहिये।

(iii) प्रत्येक पौधे को अपने जीवनकाल की वयस्क अवधि पूर्ण करने से पहले आवश्यक पर्ण छत्र फैलाव/आच्छादन स्थापित कर लेना चाहिये।

(iv) केवल परिपक्व पत्तियां ही सौर ऊर्जा का दोहन करने में सक्षम है अतः नई कोमल पत्तियों और बूढ़ी मरणासन्न पत्तियों को गणना में नहीं लिया जाना चाहिये।

(v) परिपक्व पत्तियों में पूर्ण प्रकाश-संश्लेषण अवस्था में संग्राहक अंगों का समान विकास होना आवश्यक है ।

पुर्नचक्रण प्रक्रिया - वर्ष दर वर्ष उत्तरोत्तर उत्पादन प्राप्त करने हेतु आवश्यक है जैविक अवशेषों का पुर्नचक्रण प्रभावी रूप से किया जाये। इस पुर्नचक्रण प्रक्रिया के तीन प्रमुख अवयव हैं: (अ) वायुवीय अवयव जैसे कार्बन डाईऑक्साइड, ऑक्सीजन और नत्रजन (नाइट्रोजन) (ब) मृदा से प्राप्त होने वाले खनिज पदार्थ एवं (स) जल। सभी आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता के लिए आवश्यक है कि मृदा की उर्वरता बनी रहे । एक अच्छी उर्वरता वाली मृदा अपनी उर्वरक संरचना को तभी बनाये रख सकती है । जब उसमें खनिजीय और जैविक अंश की मात्रा बराबर हो । प्रयोग परिवार की भाषा में इस प्रकार की मृदा को नर्सरी मृदा कहा गया है । एक घन फुट नर्सरी मृदा में आधा भाग खनिज मिट्टी का होता है और आधा भाग पूर्ण रूप से अपघटित कम्पोस्ट अर्थात मृत जैविक पदार्थ वाला होता है । खाद्य श्रंखला के अंतिम चरण में मल-मूत्र जैविक पदार्थ सड़ कर पहले कम्पोस्ट में परिवर्तित होते हैं तथा उसके बाद खनिजिक तत्वों तथा फिर गैसों में बदलकर लुप्त हो जाते हैं।

(अ) वायवीय अवयवों में यद्यपि कार्बन डाइऑक्साइड एवं ऑक्सीजन की कोई चिंता नहीं करता परंतु नत्रजन की आपूर्ति नत्रजन स्थिरीकरण करने वाले जीवाणुओं एवं अपघटित जैविक पदार्थो द्वारा की जाती है ।

(ब) चूँकि खनिज तत्वों की संपूर्ण मात्रा मृदा से प्राप्त होती है। अतः यह आवश्यक है उनकी मांग तथा प्रतिपूर्ति में सामंजस्य बनाकर रखा जाये। फसलों द्वारा आहरित तत्वों की प्रतिपूर्ति उन्हीं फसलों के अवशिष्ट या अन्य स्रोत से प्राप्त अवशिष्टों के पुर्नचक्रण द्वारा सुनिश्चित की जानी चाहिये। पौधों द्वारा अवशोषित अधिकतर खनिज पत्तियों और टहनियों में एकत्र रहते हैं और इनका एक छोटा भाग ही फलों और दानों में संग्रहित होता है । संतुलन बनाये रखने के लिए पत्तियों और टहनियों आदि में समाहित खनिजों को पुर्नचक्रण द्वारा वापस उसी मृदा को लौटा दिया जाना चाहिये। फलों व दानों द्वारा ग्रहण किये गये तत्वों की पूर्ति पशुमल खाद, स्थानीय स्रोतों से बनाई गई कम्पोस्ट या आस-पास के जंगलों से एकत्रित पौध अवशेषों द्वारा की जा सकती है।

(स) जल चक्र प्रकृति द्वारा संचालित है जिसमें सागर जल वाष्पीकृत होकर वर्षा रूप में धरती पर आता है और लौटते हुए अपने साथ अनेक प्रकार के खनिज तत्व लेकर वापस सागर में समाहित हो जाता है। समुद्र के एक लीटर पानी को वाष्पीकृत होने के लिए 600 किलो कैलोरी सौर ऊर्जा की आवश्यकता होती है । वाष्पीकरण से जो बादल बनते हैं वे तेज हवाओं की सहायता से धरती की ओर आते हैं और वर्षा होती है । धरती अपने पूरे जीवन चक्रों के लिए पूर्णतः वर्षा जल पर निर्भर है और समुद्र का समस्त जीवन चक्र जमीन से बहकर आये खनिज पदार्थों पर निर्भर है । नैट्यूको संस्कृति में वर्षा जल और उसमें समाहित सौर ऊर्जा के संरक्षण व संपूर्ण प्रयोग पर विशेष बल दिया गया है। हर स्थिति में यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि वर्षा जल कभी भी बहने या बेकार न होने पाये और उसकी प्रत्येक बूँद का फसल उत्पादन में प्रयोग हो। प्रयोग परिवार के अनुमान के आधार पर एक किलो जीव अंश उत्पादन (सूखे वजन के आधार पर) के लिए लगभग 6000 ग्राम जल की आवश्यकता होती है । एक किलो कार्बोहाइड्रेट्स के उत्पादन के लिए भी इतने ही

जल का उपयोग होता है । शेष जल अस्थायी रूप में पौधों द्वारा उपयोग होता है और फिर उत्सर्जन प्रक्रिया द्वारा वातावरण में छोड़ दिया जाता है, जिससे आर्द्रता बनी रहती है और सूक्ष्म वातावरण का विकास होता है जो स्थानीय पारिस्थितिकी के विकास में सहायक होता है ।

ऊर्जा भंडार एवं ऊर्जा चक्र - प्राकृतिक खाद्य श्रृंखला हरे पौधों में कार्बोहाइड्रेट्स के संश्लेषण से प्रारंभ होती है जो वृहद, सूक्ष्म और अतिसूक्ष्म उपभोक्ताओं से होते हुए अंत में मृत जीवांश रूप में पहले कम्पोस्ट में तथा फिर मूल खनिज तत्वों व गैसों में बदलकर वापिस प्रकृति में समाहित हो जाती है। यद्यपि यह प्रक्रिया पूर्णतः प्राकृतिक है परंतु मानव ने अपने फायदे के लिये अधिक से अधिक भूमि फसल उगाने में लगाकर, अनेक प्रकार के यंत्रों का प्रयोग कर तथा विभिन्न ऊर्जा स्रोतों का उपयोग कर इस प्रक्रिया को तीव्रता प्रदान की है। सौर ऊर्जा के एकत्रीकरण में जानवरों का उपयोग एक महत्वपूर्ण पहलू है अतः इसका पूरा लाभ लेना चाहिये। पशु भी इस ऊर्जा चक्र के अभिन्न अंग हैं और चारे रूप में प्राप्त की गई सौर ऊर्जा को पशुओं को श्रम कार्य में लगाकर प्राप्त किया जा सकता है। अन्यथा पशुओं को दी गई अधिकांश ऊर्जा व्यर्थ हो जायेगी। मानव निर्मित औजारों व यंत्रों द्वारा इस ऊर्जा को वॉंछित रूप दिया जा सकता है। प्रयोग परिवार की दृष्टि में वे सभी प्राकृतिक पहलू जो जैव द्रव्यमान उत्पादन को गति दे सकते हैं उन सभी का उनकी पूर्ण क्षमता के साथ प्रयोग किया जाना चाहिये।

नैट्युको सार - प्रयोग परिवार के सदस्यों की अवधारणा में जहॉं ''प्राकृतिक खेती प्रकृति पर विश्वास करके प्रकृति आधारित है वहीं नैटुको संस्कृति प्रकृति को अधिक से अधिक जानकर उसके साथ सहयोग कर तथा सभी प्राकृतिक ऊर्जा स्रोतों के भरपूर दोहन पर आधारित है। इस पध्दति में सौर ऊर्जा को सर्वाधिक महत्व दिया गया है, साथ ही नर्सरी मृदा को जिसे पौध अवशेषों के उपयोग से तैयार किया जाता है की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। इस संस्कृति में यदि उपर्युक्त योजना तैयार की जाए तो पांच सदस्यों वाला एक परिवार 1000 वर्गमीटर (10 गुन्था) जमीन से अपनी आवश्यकताएं पूरी कर सकता है परंतु इसके लिए प्रयोग परिवार के दृष्टिकोण को समझना होगा, अपने स्वयं के प्रयोगों व विज्ञान आधारित नई पध्दतियों को काम में लाना होगा। और एक बार इन सभी पहलुओं को समझकर उत्पादन प्रक्रिया में शामिल कर लिया जाये तो यह संस्कृति सबके लिये भरपूरता का वचन देती है।

(6) होमा खेती - होम खेती की शुरूआत का पता वेदों से चलता है इसका सिध्दांत है कि ''आप वातावरण को शुद्ध व दोषमुक्त रखेंगे तो स्वच्छ वातावरण आपको सभी दोषों से मुक्त करेगा।'' होमा खेती के प्रणेता इसे अन्वेषित अध्यात्मिक विज्ञान कहते हैं और यह मूलतः वैदिक काल की आध्यात्मिक प्रक्रिया है। होमा खेती की अवधारणा के अनुसार यदि पवित्र अग्नि के समक्ष विशिष्ट संस्कृत मंत्रों का उच्चारण (अग्निहोत्र पूजा) निश्चित समय पर किया जाये तो पूरा वातावरण ऊर्जामय हो जाता है जिसमें समस्त जीव स्वरूपों की जैविक क्रिया बढ़ जाती है। यद्यपि इस प्रक्रिया में कोई भी पद खेती विशिष्ट नहीं है परंतु यह प्रक्रिया परिवार, वातावरण, पौधों, फसलों व पशुओं को ऊर्जा प्रदान करती है । पूजा या हवन से प्राप्त राख का उपयोग खाद रुप में पौधों और जानवरों आदि को शक्ति प्रदान करने में किया जा सकता है। होमा जैविक खेती चूॅंकि एक वातावरण उपचार प्रक्रिया है अतः इसे किसी भी प्रकार की अन्य जैविक खेती प्रक्रिया के साथ

अपनाया जा सकता है। होमा प्रणाली भले ही बहुत कम खर्चीली हो परंतु इसके प्रचालन में अत्याधिक अनुशासन और समय का नियंत्रण अति आवश्यक है। अग्निहोत्र मूलतः होमाग्नि तकनीक है जो कि वेदों के अनुसार सूर्योदय एवं सूर्यास्त की जैविक लय ताल पर आधारित है और प्राचीन वेद विज्ञान में इसका उल्लेख मिलता है। अग्होत्र को वर्तमान समय में काफी सरल और व्यवस्थित कर दिया गया है । अतः कोई भी इसे प्रयोग कर सकता है । अग्निहोत्र के दौरान सूखा गाय का गोबर व घी को (मक्खन का शुध्द रूप), उल्टे शंकु के आकार के तांबे के बर्तन में (हवन कुंड में) भूरे चावलों के साथ एक विशेष मंत्र का जाप करते हुए अग्नि प्रज्वलित कर जलाया जाता है । ऐसी मान्यता है है कि हवन कुण्ड में जैविक पदार्थो के जलने व उपयुक्त मंत्रोपचार से मूल्यवान शुद्धिकरण ऊर्जा निकलती है । यह ऊर्जा वातावरण में समाहित होने के साथ-साथ हवन कुण्ड की राख में भी समाहित हो जाती है । इस ऊर्जा से भरी राख का जैविक खेती में विभिन्न रूपों में प्रयोग किया जा सकता है। अग्निहोत्र एवं होम या हवन की राख को खेतों या क्यारियों में फैला देने के अतिरिक्त और भी कई प्रकार से इसके उपयोग की सलाह दी गई है । यहां पर कुछ उदाहरण दिये जा रहे है :-

बीजों और कंदों के उपचार हेतु -

बुआई से पहले बीजों और कंदों को हवन कुण्ड की राख और गोमूत्र मिश्रण से उपचारित करना चाहिये । 2-5 लीटर पानी में 2-5 लीटर/गौ मूत्र मिलाकर इसमें चार चम्मच अग्निहोत्र राख (प्रति पांच लीटर के हिसाब से) डालकर मिश्रण बनाये और इसे अच्छी तरह से हिलायें । बीजों और कंदों को इस मिश्रण में 30-40 मिनट के लिये डुबो कर रख दें । इससे पौधों का अंकुरण अच्छा होगा और उनमें कीट व व्याधियों की प्रतिरोधक क्षमता अधिक होगी । गाय के गोबर के समान, गौ मूत्र में भी बैक्टीरिया के खिलाफ लड़ने की क्षमता होती है और बीजों और कंदों के चारों ओर एक परत चढ़ जाती है जो कि बीजों और कंदों की रक्षा करती है । उपचारित बीज छॉव में फैलाकर सुखा लें। बीज इतने सूखे होने चाहिये कि आसानी से चारों तरफ बिखेरे जा सके परंतु इतने भी सूखे न हो कि बीजों की परत निकल जाये । यदि यह पूरी तरह सूख जायेंगे तो बीजों का अंकुरण नहीं होगा अतः इनमें हल्की नमी होना आवश्यक है । कंदों को उपचारित करने के बाद तुरंत रोप देना या लगा देना चाहिये ।

उर्वरक या खादें -

अग्निहोत्र राख व बिच्छू बूटी अर्क का मिश्रण बनाकर पौधों को खाद रूप में दिया जा सकता है। यह विशिष्ट द्रव्य पौधों को शक्ति प्रदान करता है । बिच्छू बूटी अर्क को 7 से 14 दिनों तक या मौसम के अनुसार अग्निहोत्र राख व पानी मिलाकर सड़ने दें। सड़न पूर्ण होने पर छानकर अर्क निकाल लें। इस अर्क को एक से नौ के अनुपात में जल में मिलाकर स्प्रे करें।

पौध पुष्टिकारक घोल - अग्निहोत्र पौध पुष्टिकारक घोल बनाने के लिए चार चम्मच अग्होत्र राख और चार चम्मच बारीक पिसा हुआ सूखा गोबर लेकर लगभग पांच लीटर पानी में डालकर हिलायें और स्प्रे रूप में पौधों पर स्प्रे करें। इसे 14 दिनों के अंतराल में या आवश्यकतानुसार दे सकते है ।

छिड़काव वाला घोल - छिड़काव किये जाने वाला पुष्टिकारक घोल पांच लीटर पानी में चार चम्मच अग्निहोत्र राख मिलाकर बनाया जा सकता है । इस घोल को तीन दिनों तक के लिए रख देते है

और फिर बारीक छन्नी से छान लेते है यह पौधों को कीटों और अन्य बीमारियों से बचाता है। छिड़काव किये जाने वाले घोल को कुछ विशिष्ट फर्न की कलियों से भी तैयार किया जा सकता है, इसमें 150 ग्राम फर्न की कलियों को दो लीटर पानी में दो चम्मच अग्निहोत्र राख के साथ मिलाकर सात से दस दिनों के लिए सड़ने को रख देते है, फिर इसे पतली महीन छन्नी से छानकर छिड़काव पध्दति से पौधों पर समान रूप से छिड़क देते है यह पौधों की कीट आदि से (जैसे शम्बूक) रक्षा करता है ।

ग्लोरिया बायोसोल एक प्रभावशाली होम जैव उर्वरक -

ग्लोरिया बायोसोल बहुत ही प्रभावशाली जैव उर्वरक है जिसे होम वातावरण से तैयार किया जा सकता है । बायोसोल द्रव्य का उपयोग पौधों में मृदा का पालन पोषण करता है । बायोसोल वर्मीवाश से श्रेष्ठ है जिसमें अत्याधिक संख्या में लाभकारी सूक्ष्मजीव और होम या हवन की ऊर्जा होती है। अतिग्होत्र राख उन सभी तत्वों पर सकारात्मक प्रभाव डालती है, जिनकी सहायता से बायोसोल को सूक्ष्म मात्रिक तत्वों से समृध्द बनाया जाता है ।

बायोसोल बनाने हेतु आवश्यक तत्व :-

(i) ताजा गाय का गोबर
(ii) केंचुआ खाद
(iii) गौ मूत्र
(iv) अग्निहोत्र की राख
(v) पानी

उपरोक्त तत्वों को 200, 500 या 1000 लीटर टैंक में मिला लेते है । इसमें एक तांबे का श्रीयंत्र डाल दिया जाता है । इसके पश्चात् टैंक को बीस से तीस दिनों तक के लिए सीलबंद कर देते है। पाचन की क्रिया पूर्ण होने के पश्चात् द्रव को निकाल सकते है । बायोसोल को अग्निहोत्र राख के घोल के साथ एक से दस के अनुपात में मिलाकर उपयोग करते है । एक एकड़ के लिए 200 लीटर बायोसोल का घोल आवश्यक है । बायोसोल मिश्रण का छिड़काव 15 दिनों के अंतराल से किसी भी फसल पर किया जा सकता है । बायोसोल मिश्रण का प्रयोग सूर्योदय से पूर्व या सूर्यास्त के बाद करना चाहिये । यदि हम बायोसोल मिश्रण को अच्छी तरह से बंद केन में रखते है तो यह लंबे समय तक ठीक रहेगा अर्थात लगभग 6 महीने तक बचा हुआ बायोसोल का ठोस या गाढ़ा मिश्रण (जिसमें अत्याधिक सूक्ष्म पुष्टिकारक होते है) किसी भी प्रकार की जैविक खाद के साथ एक से पॉच के अनुपात में मिलाकर दे सकते है ।

जैविक खेती में ई.एम.या प्रभावकारी सूक्ष्मजीवाणु तकनीक -

ई. एम. तकनीक में अनेक प्रकार के मित्र सूक्ष्मजीवों का मिश्रण विभिन्न क्रिया कलापों जैसे कृषि में फसल बढ़वार हेतु, कम्पोस्ट बनाने हेतु, जल उपचार इत्यादि हेतु प्रयोग किया जाता है। यह तकनीक सर्वप्रथम जापान में क्यूसेई नैचुरल फार्मिंग इंस्टीट्यूट द्वारा वर्ष 1980 मे विकसित की गई थी। इस तकनीक को विकसित करने का मुख्य ध्येय था विभिन्न सूक्ष्मजीवों को मिलाकर एक ऐसे जैविक उत्पाद का निर्माण जिससे मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाया जा सके, मृदा जन्य बीमारियों की रोकथाम की जा सके, भूमि में विद्यमान जैव अवशिष्ट को जल्दी सडाया जा सके और फसलों की रासायनिक खादों पर निर्भरता कम की जा सके। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये नवम्बर

1989 में थाइलैंड देश में इ. एम. तकनीक पर एक अंर्तराष्ट्रीय गोष्ठी आयोजित की गई, जिसके अंतर्गत "एशिया पैसिफिक नैचुरल एग्रीकल्चर नेटवर्क" की स्थापना की गई। यह नेटवर्क अब इस इ. एम. तकनीक आंदोलन को आगे बढ़ा रहा है।

ई. एम. क्या है?

ई. एम. का मतलब है इफेक्टिव माइक्रोओरगेनिज्मस् या प्रभावी सूक्ष्मजीव। ई. एम. प्रकृति में उपलब्ध अनेक प्रकार के प्रभावी मित्र सूक्ष्मजीवों का मिश्रण है। इन सूक्ष्म जीवों में प्रमुख हैः नत्रजन स्थिरीकारक, फास्फेट घोलक, प्रकाश संश्लेषीय जीवाणु, लेक्टिक एसिड जीवाणु, यीस्ट, पौध बढ़वार उत्प्रेरक जीवाणु तथा अन्य कई प्रकार के फफूंद व एक्टिनोमाइसिटीज। इस मिश्रण में हर जीवाणु का अपना एक विशिष्ट स्थान है। जो विभिन्न तत्व चक्रों को सुचारू रूप से चलाने, मृदा उर्वरता में सुधार, मृदा स्वास्थ्य में सुधार तथा पौध संरक्षण में सहायता करते हैं।

ई. एम. जैव उर्वरकों से अलग कैसे है?

हालाँकि ई. एम. में जैव उर्वरकों मे प्रयोग किये जाने वाले सभी जीवाणुओं का प्रयोग किया जाता है। परंतु जहाँ प्रत्येक जैव उर्वरक मे केवल एक या एक ही प्रकार के जीवाणुओं का प्रयोग किया जाता है वहीं ई. एम. में एक ही उत्पाद मे अनेक प्रकार के विभिन्न क्रिया कलाप करने वाले जीवाणु होते है। जैव उर्वरकों के प्रत्येक 1 ग्राम में एक ही प्रकार के जीवाणु लगभग 1-10 करोड़ जीवाणु प्रतिग्राम की मात्रा में होते है। जबकि इ. एम में अनेक प्रकार के जीवाणु कुल मिलाकर 1 करोड़ प्रतिग्राम की मात्रा में होते हैं।

ई. एम. के प्रयोग से लाभ

- ई.एम. से उपचार करने पर अंकुरण में सुधार होता है, पौधे जल्दी निकलते हैं तथा पौधों में फूल व फल जल्दी आते हैं और फल व दाने जल्दी पकते हैं।
- प्रकाश संश्लेषण प्रक्रिया में वृद्धि होती है।
- कीट प्रकोप सहने की क्षमता बढ़ जाती है।
- मिट्टी के भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों में सुधार होता है।
- एक दूसरे पर आधारित जीवन प्रक्रिया के कारण मिट्टी में सूक्ष्म जीवों एवं सूक्ष्म जन्तुओं की अच्छी बढ़वार होती है। ई. एम. के प्रयोग से वैम फफूँद का जड़ों पर फैलाव बढता है। जिससे पौधों की जल व पोषण प्राप्त करने की क्षमता बढ़ जाती है।
- जैव अवशिष्ट के तीव्र सड़न में सहायक हैं। फसल अवशिष्ट को ई. एम. से उपचारित कर सीधे प्रयोग करने से कम्पोस्ट प्रयोग करने जितना फायदा होता है तथा कम्पोस्ट बनाने की आवश्यकता नहीं रहती है।
- ई. एम. के प्रयोग से मिट्टी में केंचुओं व अन्य मित्र जीवों की संख्या बढ़ती है और मिट्टी स्वस्थ व भुरभुरी बनती है।

क्या ई. एम. का प्रयोग बार-बार करना जरूरी है?

यदि एक ही खेत मे ई. एम. का प्रयोग लगातार कुछ वर्षो तक किया जाय तो ये सभी जीवाणु मिट्टी में अच्छी प्रकार स्थापित हो जाते हैं और धीरे-धीरे वे उस मृदा वातावरण के अभिन्न अंग बन जाते हैं। और अपने आप बढने लगते है। ऐसी अवस्था मे ई. एम. के बार-बार उपयोग की आवश्यकता नहीं रहेगी।

ई. एम. प्रयोग विधि

कृषि मे ई. एम. प्रयोग में चार प्रमुख बिन्दु है।

- ई. एम. प्राप्ति - बाजार में उपलब्ध है।
- ई. एम का द्वितीयक घोल तैयार करना
- ई.एम. द्वितीयक घोल को पानी में मिलाकर स्प्रे घोल बनाना तथा
- मिट्टी व पौधों पर ई. एम. घोल का स्प्रे

ई.एम. द्वितीयक घोल तैयार करना

आवश्यकतानुसार तथा कहाँ किस प्रकार उपयोग करना है के अनुरूप ई. एम. बनाने के अलग-२ नुस्खे हैं कभी-कभी तो एक ही नुस्खा भी अलग अलग 2 स्थानों पर फसल एवं पर्यावरण के अनुरूप अलग अलग-2 तरह बनाया जाता है। कुछ लोकप्रिय नुस्खों का विवरण यहाँ दिया जा रहा है। ध्यान रहे ई. एम. के सभी नुस्खों में प्रयुक्त पानी या तो वर्षाजल होना चाहिये या ताजा ट्यूबवेल जल। नल के पानी का प्रयोग वर्जित है।

1. **ई. एम. नुस्खा क्र-1** : यह नुस्खा बीज उपचार, मिट्टी उपचार या फसलों पर सीधे स्प्रे रूप मे प्रयोग हेतु बनाया जाता है।
    - लगभग 100 लीटर पानी में 5 किलो गुड घोलें।
    - इसमे 5 लीटर ई. एम. द्रव मिलायें।
    - अच्छी प्रकार मिलाकर किसी प्लास्टिक की कैन या ड्रम में भरकर सील कर रख दें।
    - 7 दिन पश्चात् इस घोल को 1:1000 के अनुपात में पानी मे मिलाकर मिट्टी या फसल पर स्प्रे करें। बीज उपचार हेतु बीजों को इस घोल में कुछ समय तक डुबोकर रखें।

2. **ई. एम. नुस्खा क्र. 5** यह नुस्खा नाशीजीवों के नियंत्रण के लिये बनाया जाता है।
    - 600 मि.ली. पानी में 100 ग्राम गुड घोलें
    - इस घोल में 100 मि.ली. सिरका, 100 मि.ली. ब्राँडी या देशी शराब व 100 मि.ली ई. एम. द्रव मिलायें।
    - घोल को प्लास्टिक कैन मे भरकर सील कर दें।
    - घोल की घातकता बढ़ाने के लिये इसमे लहसुन की कुछ कलियाँ तथा हरी मिर्च को कुचलकर भी डाल सकते है।
    - 5-10 दिन तक सड़ने दें।

- प्रतिदिन ढक्कन खोलकर गैस निकालते रहे।
- 10 दिन में कीटनाशी तैयार हो जायेगा। इसे लगभग ३ माह तक प्रयोग कर सकते हैं।
- इस कीट नाशी का 1:1000 के अनुपात में पानी में मिलाकर पौधों एवं फसलों पर स्प्रे करें।

3- **इ. एम. पौध अरक** : इस नुस्खे में ताजा हरे पौधों को ई. एम. के साथ सड़ाकर उनका अरक प्राप्त किया जाता है।

- 2-3 किलो हरे पौधे/घास/ पत्तियाँ इत्यादि को कुचलकर पेस्ट बनायें।
- इस पेस्ट को 14 लीटर पानी में डालें।
- 42 ग्राम गुड़ को थोड़े से पानी में घोलकर इसमें मिलायें
- अब इस घोल में 420 मि.ली. ई. एम. डाल दें।
- पूरे घोल को एक प्लास्टिक ड्रम में डालकर अच्छी तरह ढककर रख दें। ड्रम को उपर तक भरें ताकि हवा के लिये कोई स्थान न बचे।
- सडन प्रक्रिया धीरे-धीरे शुरू होगी।
- पूरे द्रव को प्रतिदिन 2-3 बार हिलाकर मिला दें।
- 5-10 दिन में अरक तैयार हो जायेगा। इस अरक का पी.एच 3-5 होना चाहिये तथा इसमे कोई दुर्गंध नहीं होनी चाहिए।
- इस द्रव को छानकर 1:1000 के अनुपात में पानी में मिलाकर बुवाई से पहले खेत मे स्प्रे करें।
- खडी फसल पर प्रयोग हेतु 1:500 के अनुपात में पानी में मिलाकर स्प्रे करें। फसल पर पहली स्प्रे अंकुरण के पश्चात् प्रातः कालीन समय में करें इसके पश्चात सप्ताह में एक या दो बार स्प्रे करें।

4. ई. एम. बोकाशी

- बोकाशी ई. एम. एक प्रकार का कम्पोस्ट खाद है जिसे फसल अवशिष्ट के साथ थोड़ी मात्रा में मिलाकर प्रयोग किया जाता है और इसका उपयोग मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने में किया जाता है।
- बोकाशी के लिये उपयुक्त जैव अवशिष्ट जैसे धान व गेहूँ का बूर, मछली अवशिष्ट, जन्तु अवशेष इत्यादि एकत्रित करें। सभी अवशिष्टों का कुल आयतन लगभग 150 लीटर पानी के समकक्ष हो।
- 15 लीटर पानी में 150 ग्राम गुड़ व 50 मि.ली. ई. एम. मिलायें।
- इस मिश्रण को उपरोक्त जैव अवशिष्ट के साथ मिलायें।
- पूरे मिश्रण को एक प्लास्टिक बैग में भरकर बंद कर दें।
- इस बैग को एक और बैग में डालकर सील कर दें।
- 3-4 दिन तक सडनें दें और किसी छायादार स्थान में रखें।

- 4 दिन पश्चात् बोकाशी उपयोग हेतु तैयार हो जायेगी इसे तुरंत प्रयोग करें।
- यदि तुरंत प्रयोग न हो सके तो पोलिथीन बैग में सील करके रखें।

बोकाशी का प्रयोग :

बोकाशी को सीधे कम्पोस्ट रूप में प्रयोग किया जा सकता है। बोकाशी को अन्य फसल अवशिष्ट के साथ मिलाकर भी प्रयोग किया जा सकता है। 1.0 हैक्टर के लिये 100-150 किलो बोकाशी को उपयुक्त मात्रा में छोटे-छोटे टुकड़ों में काटे हुए फसल अवशिष्ट के साथ मिलायें और बुवाई से एक दिन पहले खेत में फैलाकर मिट्टी में मिला दें। इस मिश्रण पर यदि 1:500 के अनुपात में ई.एम. -1 व पानी का स्प्रे कर दिया जाय तो और भी अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं। बोकाशी फसल अवशिष्ट तथा ई. एम-1 के प्रयोग से कम्पोस्ट बनाने के कार्य से बचा जा सकता है।

जैविक खेती मिट्टी व पर्यावरण सुरक्षा के साथ-साथ अधिक उत्पादन भी देती है।

परिचय

जैविक एवं पारंपरिक खेती प्रक्रियाओं की प्रासंगिकता उपादेयता तथा टिकाऊपन के साथ देश की बढ़ती आवश्यकताओं को लेकर पिछले कुछ वर्षो में अनेक स्तरों पर बहस चल रही है। जैविक खेती के समर्थक तथा विरोधी दोनों इस बात पर तो सहमत है कि जैविक खेती प्रक्रियाओं से भूमि की उर्वरता में उत्तरोत्तर सुधार होता है परंतु विरोधी इस बात पर बल देते हैं कि आज की आवश्यकताओं के अनुरूप जैविक खेती न तो टिकाऊ है और न ही वांछित उत्पादन सुनिश्चित कर सकती है। इस बात को सिध्द करने या गलत साबित करने के लिये तर्क तो अनेक हैं पर दोनों के ही पास सर्वमान्य वैज्ञानिक सबूत नहीं है। एक तरफ जहां पारंपरिक कृषि की उत्पादन क्षमता तथा रसायनिक आदानों की उपादेयता पर अनगिनत साहित्य उपलब्ध है। वहीं जैविक प्रबंधन तकनीक व उसकी उपादेयता पर प्रमाणिक साहित्य का नितांत अभाव है। इन दोनों प्रक्रियाओं के तुलनात्मक अध्ययन हेतु ऐसे दीर्घावधि परीक्षणों की आवश्यकता है जो छोटे-छोटे प्लाटों पर न होकर बड़े-बड़े फार्मो में किये जायें। ये दोनों प्रक्रियायें दो अलग-अलग दर्शनों (Philosophy) पर आधारित हैं। पारंपरिक कृषि तकनीक जहां फसल तथा मिट्टी की आवश्यकता के अनुरूप रसायनों के प्रयोग पर आधारित है, वहीं जैविक खेती समूची प्रबंधन प्रक्रिया तथा मिट्टी की उर्वरता पर आधारित है। पारंपरिक कृषि तकनीकों को किसी भी परिस्थिति में छोटे-छोटे परीक्षणों से सिध्द किया जा सकता जबकि जैविक खेती के लिये पहले पूर्ण फार्म प्रबंधन व मृदा संधारण आवश्यक है। इन विरोधाभासों के बीच कुछ संस्थाओं ने इन दोनों प्रक्रियाओं की उपयुक्तता तथा उत्पादन क्षमता पर दीर्घावधि प्रयोग किये है। ऐसे तीन दीर्घावधि प्रयोगों के निष्कर्ष यहां दिये जा रहे है।

21 वर्षीय डी.ओ.के. परीक्षण के परिणाम - 1978 से जैविक खेती अनुसंधान संस्थान एवं स्विस संघीय एग्रोइकोलॉजी एवं एग्रीकल्चर अनुसंधान स्टेशन पर एक दीर्घावधि सम्मिलित परीक्षण किया गया जिसे DOK परीक्षण के नाम से जाना जाता है। (डी-बायोडायनामिक, ओ-जैविक एवं के-परम्परागत) डी.ओ.के दीर्घकालिक परीक्षण में जैविक, बायोडायनेमिक, परंपरागत तथा परंपरागत + जैविक पद्वतियों (समन्वित) का वैज्ञानिक तरीके से परीक्षण लगाकर दीर्घावधि तक उनका तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। यह परीक्षण पूरे विश्व में अपने प्रकार का अनूठा प्रयोग है और काई अन्य परीक्षण इसका सानी नहीं है। जिन फसलों पर परीक्षण किया गया उनमें प्रमुख हैं आलू, दलहन, हरी खाद, गेंहू, चारा फसलें, बंधा गोभी, जौ, रिजका, चुकंदर, सोयाबीन तथा मक्का। इन परीक्षणों के मुख्य परिणामों का विवरण निम्नानुसार है :-

1. **उत्पादकता** - उत्पादन के मामले में बायोडायनेमिक व जैविक प्रणाली पारंपरिक प्रणाली के समकक्ष या 1 से 5% तक कम उपजाऊ पाई गई। परंतु समन्वित प्रणाली की तुलना में उनकी उत्पादन क्षमता लगभग 20% कम रही। समन्ति प्रणाली में पारंपरिक व जैविक दोनों प्रणालियों का पूरा समावेश था।
2. **पोषक तत्व संतुलन** - नत्रजन संतुलन सभी प्रणालियों में नकारात्मक रहा, फास्फोरस तथा पोटाश संतुलन पारंपरिक को छोड़कर अन्य तीन प्रणालियों में थोड़ा सा नकारात्मक रहा परंतु आश्चर्यजनक रूप से जैविक प्लाटों में इस कर्मी का लंबे समय तक भी फसलों की बढ़वार

तथा उत्पादन क्षमता पर कोई प्रभाव नहीं दिखाई दिया और इन तत्वों की कमी के कोई लक्षण भी दिखाई नहीं दिये।

3. **उर्जा की खपत** - जैविक प्रक्रिया में पारंपरिक के मुकाबले उर्जा की कम खपत हुई।
4. **मिट्टी की उर्वरा शक्ति में सुधार** - जैविक खादों के प्रयोग से मिट्टी की संरचना तथा उर्वरता में सुधार हुआ। जिन प्लाटों में जैविक खादों का उपयोग हुआ उन प्लाटों की मिट्टी में कार्बन का अंश 15-20% तक अधिक पाया गया। जैविक तथा बायोडायनामिक प्लाटों में केंचुओं तथा अन्य मित्र कीटों की मात्रा भी काफी अधिक पाई गई। समन्वित प्रक्रिया के मुकाबले जैविक प्लाटों में सूक्ष्म जीवाणु कार्बन अंश 20-40% तक तथा पारंपरिक के मुकाबले जैविक प्लाटों में 60-80% तक अधिक पाया गया। मृदा एन्जाइम गतिविधि भी जैविक मिट्टी में अन्य प्रक्रियाओं के मुकाबले अधिक पाई गई।

रोडेल संस्थान का २१ वर्षीय परीक्षण

अमेरिका में पेन्सिल्वेनिया राज्य के रोडेल संस्थान में 1981 से जैविक व अन्य विधाओं के बीच 6.1 हेक्टेयर भूमि पर परीक्षण चल रहा है। इस परीक्षण में जिन तीन प्रकार की कृषि प्रणालियों पर अध्ययन किया गया वे हैं: (क) पारंपरिक विधा (ख) पशुमल खाद तथा दलहन आधारित प्रबंधन (जैविक) तथा (ग) केवल दलहन (दलहन) आधारित प्रबंधन। इस अध्ययन से प्राप्त कुछ प्रमुख निष्कर्ष निम्नानुसार है :-

1. **सामान्य वर्षा की अवस्थाओं में उत्पादन** - पहले पांच वर्ष की परिवर्तन कालावधि में जैविक, दलहन तथा पारंपरिक प्लाटों में मक्का का औसत उत्पादन क्रमशः 4222, 4743 तथा 5903 कि./प्रति हेक्टेयर रहा। सोयाबीन का उत्पादन सभी वर्षो में तीनों विधाओं में लगभग समान था।
2. **सूखे की अवस्थाओं में उत्पादन** - पांच कम वर्षा वाले वर्षों में मक्का का उत्पादन जैविक व जैविक दलहन विधाओं के अंतर्गत पारंपरिक के मुकाबले 28-34% तक अधिक रहा। अति सूखे की स्थितियों में भी जैविक विधा से अच्छा उत्पादन प्राप्त हुआ। इन सभी वर्षो में जैविक, जैविक दलहन तथा पारंपरिक प्लाटों में सोयाबीन का उत्पादन क्रमशः 1800, 1400 तथा 900 कि./प्रतिहेक्टेयर प्राप्त हुआ।
3. **जल संधारण** - 12 वर्षो के अध्ययन के दौरान जैविक प्लाटों में वर्षा जल का सबसे अधिक संधारण होना पाया गया जो पारंपरिक खेती के मुकाबले 15-20 प्रतिशत अधिक था। इससे यह साबित होता है कि जैविक प्रणाली से भूमि का जल अभियोजन तो बढ़ता ही है साथ ही जैविक खेती द्वारा जमीन का जल बाहर नहीं जाता। सन् 1995, 1996. 1998 एवं 1999 में जैविक कृषि वाले एवं पारंपरिक कृषि वाले प्लाटों में संधारित जल की मात्रा को मापा गया तो ज्ञात हुआ कि जैविक खेती वाली भूमि में जल पारंपरिक खेती वाली भूमि के जल से कहीं अधिक मात्रा में संधारित हुआ।
4. **उर्जा की खपत** - उर्जा पर होने वाले खर्च जैविक व जैविक दलहन प्रक्रिया में पारंपरिक के मुकाबले 28 व 32 प्रतिशत कम था। सोयाबीन के उत्पादन में उर्जा की खपत जैविक, जैविक दलहन एवं पारंपरिक में लगभग समान रही जो क्रमशः 2.3, 2.3 एवं 2.1 मिलियन किलो कैलोरी थी।

5. **आर्थिक लाभ** - सन् 1991-2001 के दौरान आर्थिक तुलना (जैविक हेतु प्राथमिक लागत को छोड़कर) में पाया गया कि जैविक अन्न - सोयाबीन के चक्रण एवं पारंपरिक अन्न-सोयाबीन की कृषि पध्दति में कुल लाभ लगभग एक सा हुआ। पारंपरिक विधा में जहां कुल वार्षिक लाभ लगभग 184 डालर/हेक्टेयर था वहीं जैविक दलहन प्रणाली से उत्पादित अन्न से कुल लाभ 176 डालर/हेक्टेयर था। पारंपरिक विधा में जहां कुल वार्षिक खर्च 354 डालर/हेक्टेयर रहा वहीं जैविक प्रणाली में कुल खर्च 281 डालर/हेक्टेयर था।
6. **मानव श्रम खर्च** - दस वर्षो की अवधि में पाया गया कि जैविक मक्का की खेती में पारंपरिक मक्का की खेती की अपेक्षा 25 प्रतिशत अधिक लाभ हुआ (221 डालर/हेक्टेयर के विरूध्द 178 डालर/हेक्टेयर) यह इस लिए संभव हुआ क्योंकि जैविक मक्का की उपज पारंपरिक मक्का की उपज से तीन प्रतिशत कम थी (5843 किलो/हेक्टेयर के विरूध्द 6011 किलो/हेक्टेयर) परंतु लागत 15% कम थी (351 डालर/हेक्टेयर के विरूध्द 412 डालर/हेक्टेयर)।

भारत में इक्रीसेट द्वारा किए गए सात वर्षीय दीर्घ प्रक्षेत्र परीक्षण -

भारत में यद्यपि दीर्घ कालीन अध्ययन तो नहीं किये गये परंतु किसानों द्वारा तैयार जैविक खेती प्रणालियों द्वारा विभिन्न अन्न वाली फसलों, दलहन, रेशे वाली फसलों, सब्जियां एवं फलों की खेती से पारंपरिक प्रक्रियाओं के समकक्ष उत्पादन लिया जा रहा है। उपरोक्त प्रणालियों की उत्पादन क्षमता जॉचने हेतु वर्ष 1999 से चार विभिन्न कृषि प्रणालियों पर इक्रीसेट (अंर्तराष्ट्रीय फसल अनुसंधान संस्थान) द्वारा परीक्षण किये गये। जो चार विधायें परीक्षण में शामिल की गईं वे थी (क) कम लागत प्रक्रिया-I जो कि धान के भूसे पर आधारित है, (ख) कम लागत प्रक्रिया-II जो कि फसलों के अवशेषों के उपयोग पर आधारित है, (ग) पारंपरिक (रसायन खाद उपयोग) एवं (घ) समन्वित प्रक्रिया (कम लागत प्रक्रिया -1 + परंपरागत) चूँकि भारत के अधिकांश कृषकों के पास बहुत ही कम मवेशी है, तथा उनके पास जैविक खाद भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं है अतः यह प्रयोग कम से कम पशु मल खाद व अधिक से अधिक फसल अवशिष्ट उपयोग पर आधारित रखा गया। 7 वर्षों के परिणाम निम्नानुसार हैं:

1. **फसल बढवार व उत्पादन** - छः अलग-अलग फसलों (सोयाबीन, अरहर, मक्का, ज्वार, उड़द एवं कपास) का उत्पादन पिछले छः वर्षो में काफी अच्छा हुआ है। पहले वर्ष को छोड़कर जिसमें कम लागत जैविक प्रक्रिया-I एवं कम लागत जैविक प्रक्रिया-II में पारंपरिक के मुकाबले 35-62 प्रतिशत कम उत्पादन रहा, दूसरे वर्ष से कम लागत जैविक प्रक्रिया-I एवं कम लागत जैविक प्रक्रिया-II द्वारा उत्पादन पारंपरिक के समकक्ष रहा, परंतु समन्वित से 14% कम रहा। अगर शुध्द लाभ को देखें तो प्रक्रिया-I एवं प्रक्रिया-II पारंपरिक की अपेक्षा अधिक लाभकारी रही (पहले वर्ष की परिवर्तन अवधि को छोड़कर)। पारंपरिक के मुकाबले दोनो ही कम लागत प्रक्रियाओं में शुद्व लाभ १.३ से ४.६ गुणा अधिक रहा है।
2. **नाशी जीव प्रकोप** - कम लागत जैविक प्रक्रिया-I एवं II तथा समन्वित कृषि के प्लाटों में कॉलर रॉट और स्टेम बोरर की गंभीर समस्या सामने नहीं आई और पौधों की मृत्युदर पांच प्रतिशत से कम रही जबकि पारंपरिक प्लाटों में इनकी रोकथाम एक गंभीर समस्या थी और काफी कीटनाशकों का प्रयोग किया गया। अरहर एवं कपास के मुख्य कीटों का प्रबंधन भी जैविक प्रक्रियाओं द्वारा सफलतापूर्वक किया गया। तना व फली भेदकों की समस्या भी I

एवं II में समन्वित की अपेक्षा कम थी। माहु (एफिड) की समस्या प्रक्रिया-I एवं II में जैविक प्रथम 2 वर्ष में देखी गई परंतु इस समस्या का निराकरण समय-समय पर एक प्रतिशत साबुन के घोल का छिड़काव करने से किया गया। बाद के वर्षों में कपास, मक्का और अरहर में माहु की समस्या नहीं देखी गई। 0.8 प्रतिशत वाले साबुन घोल के उपयोग से चूर्णवृत्त खटमलों व पशुओं में लगने वाले खटमलों की रोकथाम भी की जा सकती है। प्राकृतिक मित्र कीटों व कीट भक्षियों आदि की संख्या जैविक प्रक्रिया प्लाटों में पारंपरिक एवं समन्वित की अपेक्षा अधिक पाई गई।

3. **मृदा गुण तथा पोषण संतुलन** -जैविक I एवं जैविक II प्रक्रियाओं में समान उत्पादन तथा किसी भी प्रकार के खाद उपयोग न करने के बावजूद उनकी मिट्टी में पारंपरिक के मुकाबले कुल नत्रजन व फास्फोरस की अधिक मात्रा पाई गई। तीसरे व चौथे वर्ष में यह वृध्दि नत्रजन में 11-34% तथा फास्फोरस में 11-16% रही। मृदा श्वसन प्रक्रिया जैविक प्लाटों में अन्य विधाओं के मुकाबले 17-27% तक अधिक थी। इसी प्रकार अन्य महत्वपूर्ण घटक भी जैविक प्लाटों की मृदा में अधिक मात्रा में पाये गये। इनमें प्रमुख थे सूक्ष्म जीव कार्बन 28-29% अधिक, सूक्ष्मजीव अंश नत्रजन 23-28% अधिक तथा अम्ल व क्षार फास्फेटैज क्रिया 5-13% अधिक।
4. **नत्रजन एवं फास्फोरस की तुलनात्मकता** - कम लागत जैविक प्रक्रिया-I एवं जैविक प्रक्रिया-II में जहॉ पौधों के अवशेष, कम्पोस्ट, सूक्ष्मजीव आदि पोषण स्रोत के रूप में प्रयोग किये गये, में पारंपरिक के मुकाबले कुल नत्रजन उपलब्धता (27-52% अधिक) एवं फास्फोरस उपलब्धता (50-58%) अधिक रही। यह उपलब्धता पारंपरिक खेती में कुल प्रयोग की गई खाद (604 किलो नत्रजन/हेक्टेयर एवं 111 किलो फॉस्फोरस/हेक्टेयर) से कहीं अधिक थी।
5. **निष्कर्ष** - चार फसल चक्रों के साथ छः वर्षीय परीक्षण परिणामों से सिध्द होता है कि रसायनिक तथा जैविक दोनों प्रकार के आदानों के सम्मिलित प्रयोग से सर्वाधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है परंतु यह आर्थिक दृष्टि से काफी मंहगा है और शायद छोटे किसानों की पहुंच से बाहर। कम लागत की जैविक प्रबंधन तकनीक अपनाकर समान उत्पादन लगभग 25% अधिक लाभ के साथ प्राप्त किया जा सकता है। जैविक प्रबंधन में नाशी जीव प्रबंधन भी बहुत कम खर्च में किया जा सकता है। मृदा की उत्तरोत्तर बढ़ती उर्वरता जैविक प्रबंधन का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। और केवल इस एक पहलू से न केवल भूमि की उर्वरता को टिकाऊ रखा जा सकता है। बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए उन्नत उर्वर भूमि का आधार भी बनाया जा सकता है।

जैविक खेती की नेटवर्क परियोजना (आई.सी.ए.आर) द्वारा चार वर्षीय अध्ययन -

विज्ञान आधारित उत्पादनक्षम जैविक खेती को किसानों तक पहुंचाने एवं स्थानीय/क्षेत्रवार सुनिश्चित प्रबंधन पध्दति व्याप्त करने हेतु भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के फसल प्रणाली अनुसंधान निदेशालय के अधीन चार वर्ष पूर्व एक ''नेटवर्क जैविक खेती परियोजना'' का शुभारंभ किया गया। पूरे देश के 13 अनुसंधान संस्थान इस परियोजना में हिस्सा ले रहे है। किये गए अनुसंधान एवं उनके परिणामों का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है :-

इस परियोजना के अधीन लिये गये परीक्षणों का मुख्य उद्देश्य था, स्थान विशिष्ट एवं फसल विशिष्ट प्रणालियों के अंर्तगत जैविक व पारंपरिक विधियों का तुलनात्मक अध्ययन करना तथा विभिन्न जैविक आदान जैसे जैविक खाद व जैविक कीट नियंत्रण आदानों की उपादेयता का मूल्यांकन करना। मूल्यांकन के अधीन विशिष्ट स्थानों की कृषि प्रणाली में जिन फसलों को लिया गया उनमें प्रमुख थीं धान्य फसलें (मुख्यतः बासमती चावल, ड्यूरम गेहूँ, ग्रीष्मकालीन चावल, ज्वार एवं मक्का) दालें एवं तेलीय बीज (चना, मसूर, मूँग, सोयाबीन, सरसों एवं मूंगफली), मसाले (काली मिर्च, अदरक, हरी मिर्च, प्याज एवं लहसुन) फलों के पेड़ (आम) सब्जियां (आलू, भिण्डी, छोटी मक्का, चौला, मटर, टमाटर एवं फूलगोभी) कपास, चारा फसलें (ज्वार, मक्का, बाजरा, जई, चौला एवं बरसीम) एवं औषधीय पौधे (इसबगोल एवं मेथी)। चार वर्षो के अनुसंधान परिणामों का विवरण निम्नानुसार है:

1. आर्थिक लाभ एवं उत्पादकता के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों हेतु विशिष्ट कृषि प्रणालियों की पहचान की गई, जिनसे पारंपरिक खेती के समकक्ष या इससे अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है।
2. जैविक प्रणाली में वर्ष दर वर्ष उत्पादन में अभूतपूर्व बढोत्तरी दर्ज की गई।
3. जैविक प्रणाली में मृदा में उपस्थित जैविक कार्बन, उपलब्ध फास्फोरस, घनत्वता एवं सूक्ष्म जीवों की संख्या में पारंपरिक प्रणाली के मुकाबले प्रशंसनीय सुधार पाया गया। परंतु उपलब्ध नत्रजन की मात्रा जैविक भूमि में कम पायी गई।
4. जैविक प्रबंधन के अधीन विभिन्न फसलों में जैसे अदरक (ओलियोरेसिन एवं तेलीय मात्रा), हल्दी (तेल, ओलियोरेसिन, स्टार्च एवं करक्यूमिन मात्रा) काली मिर्च (ओलियोरेसिन मात्रा) मिर्च (एसकारबिक एसिड मात्रा), कपास (जिनिंग प्रतिशत) एवं सब्जियां (लौह, मैंगनीज, जिंक एवं कॉपर की मात्रा टमाटर में व फ्रांसबीन, पत्ता गोभी, फूलगोभी, मटर एवं लहसुन) में फसल विशिष्ट गुणवत्ता मानदण्डों में प्रशंसनीय सुधार देखा गया।
5. कुल वार्षिक उत्पादकता एवं शुध्द आर्थिक लाभ के आधार पर जिन जैविक खादों व आदानों के उपयोग करने से अच्छा लाभ मिला उनमें प्रमुख हैं: (1) अखाद्यों की खली + गाय के गोबर की खाद + समृध्द कम्पोस्ट (रायपुर में), (2) फार्म यार्ड मैनयोर + अखाद्यों की खली (राँची में) (3) गाय के गोबर की खाद + कुक्कुट खाद, समृध्द कम्पोस्ट + केंचुआ खाद + हरी पत्तियों की खाद + नीम की खली (धारवाड़ में) (4) फार्म यार्ड मैनयोर + केंचुआ खाद + अखाद्यों की खली (जबलपुर में), (5) फार्म यार्ड मैनयोर + फसलों के अवशेष + हरी पत्तियों की खाद चावल में - लाल कुमढ़ा एवं चावल ककड़ी एवं केंचुआ खाद + ग्लाइरीसीडिया पत्तों की खाद को आम की फसल में (करजत में), (6) फार्म यार्ड मैनयोर + अखाद्यों की खली (कोयंबटूर में), (7) फार्म यार्ड मैनयोगर + केंचुआ खाद (पतंगगर में), (8) फार्म यार्ड मैनयोर + केंचुआ खाद + फसलों के अवशेष, फार्म यार्ड मैनयोर (लुधियाना में) (9) समृध्द कम्पोस्ट + केंचुआ खाद + अखाद्यों की खली (मोदीपुरम में), (10) फार्म यार्ड मैनयोर + रॉक फास्फेट + केंचुआ खाद (बजऊरा में) (11) फार्म यार्ड मैनयोर + केंचुआ खाद + नीम की खली (कालीकट में)
6. मृदा गुणों के मापदण्डों (उपलब्ध एन.पी.के., घनत्वता, सांद्रता एवं ई.सी. आदि) के मामले में विभिन्न प्रणालियों के अंर्तगत कोई विशिष्ट अंतर नहीं पाया गया।

7. विभिन्न जैविक कीट प्रबंधन प्रक्रियाओं की विभिन्न केन्द्रों पर की गई जॉच में पाया गया कि अनेक जैविक उपाय न केवल बीमारियों/कीट पतंगों/खरपतवार नियंत्रण में सहायक है बल्कि उत्पादन में बढ़ोत्तरी भी सुनिश्चित करते हैं। उदाहरणार्थ - चावल-चना प्रणाली में महुआ खली (100 किलो/हेक्टेयर) + नीम खली (100 किलो/हेक्टेयर) + ट्राईकोग्रामा जैपोनिकम जुताई के समय +नीम अर्क का छिड़काव (0.5 प्रतिशत) पक्षियों के बैठने हेतु धान के खेतों में स्थान बनाना, के सम्मिलित प्रयोग से तना भेदक और हरी पत्ती फुदकों के आक्रमण में कमी पाई गई। परवर्त्ती चने की फसल में ट्राइकोडर्मा 5 ग्राम/किलो बीज की दर से + राइजोबियम से बीज उपचार तथा HNPV स्प्रे से फली भेदक कीट का प्रकोप कम हुआ और उत्पादन में भी वृध्दि हुई।
धारवाड में मिर्च की फसल में फली भेदक व पत्ती लपेटक की रोकथाम में - गौमूत्र : गोबर की स्लरी से किया गया वनस्पतिक छिड़काव रोपाई के तीस दिन बाद, गौमूत्र + 5% NSKE छिड़काव रोपाई के 45 दिन बाद, पंचगव्य 3% का वनस्पतिक छिड़काव रोपाई के 60 दिन बाद मक्खन युक्त दूध (20%) + पंचगव्य 3% का छिड़काव रोपाई के 75 दिन बाद, वनस्पतिक अर्क + मक्खन युक्त दूध का (20%) छिड़काव रोपाई के 90 दिन बाद, 5%NSKE + वर्मी वाश का छिड़काव रोपाई के 110 दिन बाद काफी प्रभावी पाया गया।

कालीकट में PGPR स्ट्रेन (IISR-6, IISR-8, IISR-13, IISR-51, IISR-151) एवं PB_{21} एवं P_1AR_6 (सभी जीवाणु कीटनाशी) के सम्मिलित प्रयोग से अदरक में होने वाले रोग जैसे राइजोम गलन एवं तना छेदक (Shoot boror) का प्रबंधन किया गया। बजउरा में टमाटर पर पहला छिड़काव भॉग अर्क (10% LAE) व दूसरा छिड़काव Bt. 1.0 किलो प्रति हेक्टेयर के हिसाब से एवं तीसरा छिड़काव कर्वी (10%LAE) द्वारा फल भेदकों का सफलतापूर्वक प्रबंधन किया गया।

खरपतावार नियंत्रण हेतु - धान-गेहूँ, मसूर व सरसों की फसल में रोपाई/बुवाई के 20 और 40 दिनों बाद दो बार हाथ से निराई पर्याप्त पायी गई (पंतनगर व राँची में)। सूरजमुखी-कपास खेती पध्दति में भी दो बार हाथ से की गई निराई पर्याप्त रही (कोयंबटूर में)। लुधियाना में क्यारियों में रोपाई तथा 30 एवं 45 दिन बाद ज्वार अर्क के छिडकाव से खरपतवार नियंत्रण किया गया।

पारंपरिक एवं जैविक खेती में खाद्य गुणवत्ता और खाद्य सुरक्षा की तुलना

परिचय -

विश्व में लगभग सभी मामलों में लोगों में सकारात्मक व नकारात्मक दोनों ही सोच पायी जाती है। जैविक खेती विषय भी इससे अछूता नहीं है। दोनो ही के पास अपने पक्ष में और विरूद्व अनेक तर्क, वास्तविक तथ्य व मिथक है और दोनो एक-दूसरे की वास्तविकता को सिरे से ही नकारते हुए यह तर्क देते हैं कि यह टिकाऊ नहीं है या सूचना मिथ्या है या इसकी सत्यता की जॉच नहीं की गई है। इन मिथकों व तर्कों की लंबी सूची में जहॉ कुछ तर्क सत्यता के करीब हैं तो कुछ सत्यता से परे केवल धारणाऐं हैं जिनका कोई आधार नहीं है तथा कुछ बहुत ही बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किये जा रहे हैं। इस अध्याय में जैविक और पारंपरिक खेती के विभिन्न पहलुओं को वैज्ञानिक आधार पर जॉच कर उनकी सत्यता जानने का प्रयास किया जा रहा है।

खाद्यों में बढ़ते कीटनाशी व रसायन अंश

पारंपरिक खेती में रसायनो विशेषकर कीटनाशियों के अंधाधुंध प्रयोग से खाद्यों में रसायन अवशिष्टों का स्तर लगातार बढ़ता जा रहा है। यदि हम ध्यान से जॉच करें तो पायेंगे कि यह तकनीकी दोष न होने के बजाय तकनीक के अनुचित प्रयोग का परिणाम है। बेतहाशा व अंधाधुंध रसायन प्रयोग, गलत कीटनाशी का गलत समय उपयोग, कटाई के बाद उत्पादों का कीटनाशी से उपचार व किसानो के बीच ज्यादा कीमत प्राप्त करने की लालसा इसके प्रमुख कारण हैं। परंतु ये सारे अपवाद तकनीक से ही उत्पन्न हुए हैं अतः उनसे होने वाली हानियों का भी दोष तकनीक को ही जायेगा। इसके विपरीत यह पाया गया है कि जैविक उत्पाद इस प्रकार के सभी रसायन अंशों से मुक्त होते हैं। पूरे विश्व में किये गये परिणामों व विश्लेषणों से यह सिद्व हुआ है कि जैविक उत्पादों में या तो रसायन अंश होते ही नहीं हैं या उनका स्तर जॉच की सीमा से भी कम है। अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि जैविक उत्पाद रसायन अंशों से पूर्ण रूप से मुक्त हैं और पारंपरिक उत्पादों के मुकाबले अधिक स्वस्थ व सुरक्षित हैं। जैविक खेती में सभी प्रकार के रसायन प्रयोग पर प्रतिबंध होने के कारण वातावरण व मृदा भी रसायनों के दुष्प्रभावों से पूर्णतः मुक्त होते हैं।

क्या जैविक उत्पादों का स्वाद अच्छा होता है?

स्वाद के आधार पर गुणवत्ता का मूल्यांकन करना मुश्किल है क्योंकि अलग-अलग लोगों की उनकी आदत के अनुसार अलग-अलग स्वाद, पसंद और ज्ञान है। सामान्यतः जैविक पध्दति से उत्पादित फलों और सब्जियों के स्वाद में अंतर का कोई विश्वसनीय सबूत नहीं है। पारंपरिक रूप से उगाई गई फल व सब्जियों में जल की मात्रा अधिक होती है जबकि जैविक उत्पादों में जल की मात्रा कम होने से उनकी सुगंध व स्वाद अंशों की मात्रा अधिक होती है इस कारण उनका स्वाद व गंध अधिक तीव्र होता है। परंतु इन दोनों में से कौनसा स्वादिष्ट होगा यह अलग-अलग व्यक्तियों की अपनी पसंद व आदत पर निर्भर करता है। अनेक परीक्षण व जॉच द्वारा सिद्व हुआ है कि जहॉ तक स्वाद अवयवों की बात है, तेल की बात है और स्वाद बढ़ाने वाले अवयवों की बात है तो उनकी मात्रा निर्विवाद रूप से जैविक उत्पादों में अधिक है। जैविक उत्पादों में जलीय अंश कम

होने से उनका कुल शुष्क भार अधिक होता है अतः इस कारण उनमें पोषणों की मात्रा भी अधिक होती है।

भौतिक रूप देखने पर क्या जैविक फल एवं सब्जियां अच्छी दिखती है?

आकार, रंग, मात्रा एवं दृढ़ता गुणवत्ता के प्राथमिक दृष्टव्य पहलु है। सत्यता को जानने के लिए इस संबंध में कई तुलनात्मक अध्ययन किये गये, परंतु ज्यादातर अध्ययनों में पाया गया कि परंपरागत एवं जैविक पध्दति से उत्पादित फलों सब्जियों में कोई दृष्टात्मक अंतर नहीं होता। जबकि आकार और रंग विशिष्ट किस्मों के अनुवांशिक लक्षणों तथा जलवायु, मौसम, तापमान एवं कृषि पध्दति पर निर्भर करते है। एक सी परिस्थितियों में दोनों पध्दतियों द्वारा लिए गये उत्पादों में अंतर नहीं किया जा सकता ।

क्या जैविक खेती से खाद्यों में विष और जीवाणु संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है?

खाद्यों में विष का खतरा रोगजनक जीवाणुओं की उपस्थिति से होता है। सेलमोनेला, कैम्पाइलोबैक्टर, टीनिया सोलियम, साइक्लोबैक्टर, फिरून्डी एवं एसरेसिया कोलाई स्ट्रेन 0157 कुछ विशिष्ट प्रकार के रोगजनक जीवाणु है। ये सभी रोगजनक जीवाणु पशुओं की आंत एवं उनके मल में पनपते है। जैविक खेती में जहॉ अत्याधिक मात्रा में जैविक खादें डाली जाती है। वहॉ इन रोगाणुओं के खाद्य में आ जाने की संभावनाओं पर बहस होती रही है। परंतु विस्तृत अध्ययनो में इस प्रकार के किसी भी खतरे की कोई आशंका सत्य सिद्ध नहीं हुई है। जैविक खादों के उपयोग की सिफारिश पारंपरिक खेती में भी की जाती रही है और उनकी उतनी ही मात्रा की संस्तुति की जाती है जितनी जैविक खेती में की जाती है अतः इस मामले में दानों विधाओं के बीच कोई अंतर नहीं है और रोगाणु संक्रमण की संभावना दोनो ही विधाओं में समान हैं।

क्या जैविक उत्पाद अधिक पुष्टिकारक होते है?

जैविक खेती के उत्पाद पारंपरिक खेती के मुकाबले अधिक पुष्टिकारक हैं के अध्ययन हेतु यद्यपि भारत में बहुत कम अनुसंधान हुआ है परंतु ब्रिटेन, यूरोप तथा अमेरिका में इस संबंध में व्यापक अध्ययन किये गये है। ज्यादातर अध्ययनों में देखा गया है कि यदि हम इन अध्ययनों को एक-एक कर बिन्दु विशेष के संदर्भ में जॉचें तो दोनो विधाओं के उत्पादों में कोई विशेष अंतर नहीं दिखाई देगा। कुछ अध्ययन जरूर ऐसे हैं जिनमें कहीं पारंपरिक उत्पाद उत्कृष्ट पाये गये तो कहीं जैविक उत्पाद अधिक पुष्टिकारक थे। परंतु यदि ऐसे अध्ययनों का एक साथ अध्ययन करें और सही सवाल करें तो एक अलग ही छवि सामने आती है जिससे यह सिद्ध होता है कि जैविक उत्पादों में जहॉ अनेक पोषक तत्व व विटामिन्स अधिक पाये जाते हैं वहीं विषाक्त अवयव जैसे नाइट्रेट एवं भारी धातु कम मात्रा में होते हैं। अनेक अध्ययनों से यह सच सामने आया है कि जैविक उत्पादों में विटामिन-सी आवश्यक खनिज जैसे लोहा, मैगनीशियम, फास्फेट और कैल्सियम अधिक मात्रा में पाये गये। 90% से अधिक जैविक उत्पादों के रस में विषाक्त नाइट्रेट की मात्रा काफी कम पाई गई। जैविक उत्पाद न केवल अधिक पुष्टिकारक हैं। बल्कि उनमें हानिकारक तत्वों की मात्रा भी काफी कम है। यद्यपि यह विवाद का विषय हो सकता है कि कुछ पुष्टिकारकों की अधिक मात्रा व कुछ हानिकारक तत्वों की कमीं से मानव स्वास्थ्य को कोई लाभ या हानि है या नहीं।

जैविक खेती में कवक विषाणुओं एवं पादप टॉक्सिन का खतरा

भोज्य पदार्थों पर उगने वाले कवक व जीवाणुओं में से कुछ कवक विशिष्ट प्रकार के वानस्पतिक विष उत्पन्न करते हैं जो मानव व पशु स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। अनेक बार यह आशंका व्यक्त की जाती है जैविक उत्पादों के भंडारण में जहाँ किसी भी परिरक्षण रसायन का प्रयोग नहीं किया जाता ये कवक व इनसे उत्पादित विष मानव स्वास्थ्य के लिये खतरा हो सकता है। परंतु ये समस्त चिंताएं मात्र काल्पनिक भ्रांतियाँ हैं और इस संबंध में आज तक कोई भी ऐसा अध्ययन नहीं है जो इस चिंता को खतरे के रूप में प्रमाणित करता हो। अमेरिका के खाद्य एवं दवा प्रशासन द्वारा किये गये अध्ययनों से यह सिद्ध होता है कि जैविक उत्पादों में उपरोक्त विषाक्त अंश मान्य मापदण्डों से बहुत नीचे है और इनका मनुष्यों एवं जानवरों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है। इस बात के भी कोई प्रमाण नहीं है कि जैविक भोजन से कवक एवं पादप विषाणुओं से कोई खतरा होता है। जबकि इसके विपरीत यह सर्वविदित है कि प्रतिदिन की खाद्य सामग्री जैसे संतरे का रस, जायफल, कॉफी एवं चाय आदि में पादप टॉक्सिन की अधिकता होती है और हमारा शरीर इन समस्त प्राकृतिक उत्पादों के अनुकूल ढल चुका है। अतः अंत में सार यही है कि जैविक उत्पादों से किसी भी प्रकार की कवकीय या पादपीय विषाक्तता का खतरा किसी भी रूप में नहीं है।

जैविक प्रमाणीकरण

जैविक प्रमाणीकरण परिचय

जैविक प्रमाणीकरण एक प्रक्रिया आधारित प्रणाली है जिसमें किसी भी तरह के कृषि उत्पादन, प्रसंस्करण, पैकेजिंग, परिवहन तथा वितरण प्रणाली का प्रमाणीकरण किया जा सकता है इसके निर्धारण के लिए अलग-अलग देशों के अपने मानक हैं और अलग-अलग प्रमाणीकरण प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत उत्पादन, भंडारण, प्रसंस्करण, पैकेजिंग तथा परिवहन का प्रमाणीकरण किया जाता है। मोटे तौर पर इस प्रक्रिया के प्रमुख चरण इस प्रकार हैं:-

- सभी संश्लेषित व रसायनिक आदानों तथा परिवर्तित अनुवांशिकी के जीवों का प्रयोग प्रतिबंधित है।
- केवल ऐसी भूमि जिसमें कई वर्षों से किसी भी प्रतिबंधित आदान का प्रयोग न किया हो प्रमाणीकरण प्रक्रिया के अंतर्गत लाई जा सकती है।
- सभी प्रक्रियाओं व कार्यकलापों का प्रलेखन।
- जैविक व अजैविक उत्पादन इकाईयों को एक-दूसरे से बिल्कुल अलग रखना तथा
- समय-समय पर निरीक्षण कर जैविक मानकों का पालन सुनिश्चित करना।

प्रमाणीकरण की आवश्यकता

ग्राहकों को उच्च गुणवत्ता का उत्पाद सुनिश्चित करने तथा धोखाधड़ी से बचाने के लिये प्रमाणीकरण एक आवश्यक प्रक्रिया है। उत्पादकों के लिये प्रमाणीकरण जहॉ बाजार को सुलभ बनाता है वहीं ग्राहकों को यह सुरक्षा व गुणवत्ता की गारंटी है। हमारे देश में अनेक उत्पादों पर जैसे ISI मार्क लगाया जाता है या खाद्य सामग्री पर ''एगमार्क'' लगता है ठीक उसी प्रकार जैविक उत्पादों पर प्रमाणीकरण के पश्चात् ''इण्डिया आरगेनिक'' मार्क लगाया जाता है जो उन उत्पादों के जैविक मानकों पर खरा होने की गारंटी है।

प्रमाणीकरण हेतु अलग-अलग देशों के अपने मानक हैं और अधिकृत प्रमाणीकरण संस्थायें हैं। ये संस्थायें अपने-अपने अलग या एक राष्ट्रीय मानक कार्यक्रम के तहत कार्य करती हैं।

प्रमाणीकरण प्रक्रिया

किसी भी फार्म या खेत को प्रमाणीकृत करने के लिये किसान को एक निश्चित प्रक्रिया के तहत सारे क्रिया-कलाप नियंत्रित करने होते हैं तथा सभी क्रिया-कलापों का लेखा-जोखा रखना होता है। प्रमाणीकरण प्रक्रिया के प्रमुख चरण इस प्रकार हैं:-

- **मानकों का ज्ञान** - पूरी जैविक उत्पादन प्रक्रिया हर स्तर व कार्य के लिये निर्धारित मानकों के अधीन करनी होती है अतः उत्पादन मानकों व उनके प्रचालन की पूरी जानकारी आवश्यक है।
- **अनुपालना** - सभी प्रक्रियाओं के प्रचालन में मानकों व दिशा-निर्देशों की पूर्ण अनुपालना करनी होती है इसमें सभी उपकरणों व भंडारण स्थलों की सफाई अलग से उनकी देखभाल, निश्चित स्रोतों से आदानों का क्रय, केवल अनुमत आदानों का प्रयोग इत्यादि शामिल हैं।

जैविक उत्पादन इकाईयों को अजैविक से अलग करना तथा प्रतिबंधित आदानों के पूर्ण निषेध का पालन भी आवश्यक है।

- **प्रक्रिया प्रलेखन** - सभी क्रियाकलापों व प्रक्रियाओं का स्वीकृत रूप में प्रलेखन प्रमाणीकरण की सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में फार्म या उत्पादन इकाई का कई वर्ष पूर्व तक का इतिहास भी प्रलेखित कर रखना आवश्यक है।

- **योजना** - प्रत्येक वर्ष के लिये एक लिखित योजना बनाकर प्रमाणीकरण संस्था से उसकी अनुमति ली जाती है और फिर वर्ष भर के क्रियाकलाप उसी योजना के तहत चलाये जाते हैं।

- **निरीक्षण** - प्रत्येक फार्म या उत्पादन इकाई का वर्ष में कम से कम एक बार अवश्य निरीक्षण किया जाता है। इस निरीक्षण में सभी प्रलेखन दस्तावेजों, उत्पादन योजना इत्यादि की जॉच की जाती है और उत्पादकों व उसके कार्यकर्ताओं से साक्षात्कार कर मानकों की अनुपालना सुनिश्चित की जाती है।

- **प्रमाणीकरण शुल्क** - उत्पादकों को पूरी प्रमाणीकरण प्रक्रिया के लिये प्रमाणीकरण संस्था को वॉछित शुल्क देना होता है। पूर्ण शुल्क के भुगतान तथा सफल निरीक्षण के पश्चात् ही प्रमाणीकरण प्रदान किया जाता है।

- **पूर्ण प्रक्रिया प्रलेखन** - आदानों के क्रय से लेकर, उत्पादन तक तथा उनके प्रसंस्करण व विपणन तक पूरी प्रणाली का रिकार्ड रखा जाता है। यह सारा रिकार्ड प्रमाणीकरण प्रक्रिया का प्रमुख आधार है तथा विपणन पश्चात् भी उस उत्पाद का उत्पादन विवरण जानने में सहायक है। प्रमाणीकरण संस्थायें समय-समय पर निरीक्षण करती हैं। ये निरीक्षण पूर्व स्वीकृत समय पर या बिना बताये भी अचानक किये जाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर मिट्टी, फसल या उत्पादों के नमूनों की भी जॉच कराई जाती है।

किसी भी फार्म पर जब जैविक प्रबंधन अपनाया जाता है तो यह सुनिश्चित किया जाता है कि उस फार्म की मिट्टी प्रमाणीकृत किये जाने से पूर्व सभी रसायनों के अवशिष्ट से मुक्त हो। इसके लिये जैविक प्रबंधन शुरू करने के बाद २-३ वर्ष का समय परिवर्तन कालावधि का रखा जाता है। इस अवधि में भी सभी मानकों की पूर्ण अनुपालना आवश्यक है। ऐसे फार्म जहॉ पहले से कोई भी प्रतिबंधित आदान नहीं उपयोग किया गया है या प्रतिबंधित प्रक्रिया नहीं अपनाई है वहॉ परिवर्तन कालावधि घटाइ जा सकती है।

अन्य प्रक्रियाओं जैसे प्रसंस्करण, भंडारण तथा परिवहन का भी प्रमाणीकरण इसी प्रकार किया जा सकता है। प्रसंस्करण में उपकरणों की शुद्वता, कच्चे माल का स्रोत तथा प्रक्रिया में प्रयोग किये जाने वाले तत्वों या योजकों का उपयोग मानकों के अनुरूप होता है। भंडारण में यह सुनिश्चित किया जाता है कि जैविक उत्पाद अन्य उत्पादों के साथ न मिलने पाये और उनकी सुरक्षा केवल

अनुमत पदार्थों के प्रयोग से हो तथा किसी भी स्तर पर जैविक उत्पाद प्रतिबंधित रसायनों के सम्पर्क में न आयें।

भारत में प्रमाणीकरण तंत्र

भारत सरकार के विपणन मंत्रालय के अंतर्गत ''राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम'' के अधीन जैविक प्रमाणीकरण तंत्र कार्य कर रहा है। कृषि प्रसंस्करण उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण (APEDA) द्वारा यह तंत्र प्रचालित होता है। घरेलू बाजार हेतु राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम कृषि विपणन सलाहकार द्वारा एगमार्क कानून के अंर्तगत नियंत्रित किया जाता है।। इस कार्यक्रम के अंतर्गत २० प्रमाणीकरण संस्थाओं को प्राधिकृत किया जा चुका है। इस पूरे कार्यक्रम की जानकारी तथा राष्ट्रीय मानकों का विवरण APEDA की वेबसाइट "www.apeda.com/npop" पर उपलब्ध है।

जैविक कृषि के राष्ट्रीय मानक

जैविक कृषि के राष्ट्रीय कार्यक्रम के अंतर्गत व्यापार मंत्रालय ने जैविक कृषि के राष्ट्रीय मानक निर्धारित किये हैं। ये मानक मुख्यतया ६ भागों में बाँटे है।

१. बदलाव (Conversion)
२. फसल उत्पादन (Crop Production)
3- पशु पालन (Animal husbandry)
4- खाद्य प्रसंस्करण एवं संचालन (Food processing & handling)
5- नामांकन या लेबल लगाना (Labelling)
6- भंडारण एवं परिवहन (Storage & Transport)

१. बदलाव आवश्यकताऐं

जैविक कृषि प्रबंधन शुरु करने के समय से लेकर वास्तविक जैविक कृषि फसल के उगाने या पूर्ण जैविक कृषि पशुपालन शुरु करने के बीच के समय को बदलाव समय (Conversion Period) के रुप में जाना जाता है। एक समयबद्व कार्यक्रम के अंतर्गत पूरे फार्म को उसके पशुधन समेत मानकों के अनुरुप ढाल देना चाहिये यदि पूरे फार्म को बदलना संभव न हो तो दोनो भागों को अलग-अलग रखना चाहिये और निरीक्षण करवाना चाहिये। बदलाव समय सीमा में समय-समय पर निरीक्षण अति आवश्यक है।

एक ही फार्म पर साधारण कृषि द्वारा, बदलाव समय के अंतर्गत या जैविक कृषि उत्पादन विधि द्वारा उत्पादन ऐसी अवस्था में जहाँ उन्हें बिलकुल अलग-अलग न किया गया हो का उत्पादन पूर्ण रुप में वर्जित है। इसे सुनिश्चित करने के लिये प्रमाणीकरण कार्यक्रम के अंतर्गत पूरी उत्पादन प्रक्रिया का निरीक्षण अति आवश्यक है। यदि किसी स्थान पर पहले से जैविक कृषि तकनीकों का प्रयोग हो रहा है तो प्रमाणीकरण संस्था अपने विवेक से बदलाव समय को कम भी कर सकती है।

जैविक कृषि प्रबंधन

जैविक कृषि प्रमाणीकरण एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया है अतः प्रमाणीकरण कार्यक्रम के अंतर्गत उसी उत्पादन प्रक्रिया को प्रमाणीकृत करना चाहिये जो लम्बी अवधि के लिये की जा रही हो। बदली गई भूमि एवं पशु बार बार साधारण प्रबंधन या जैविक कृषि प्रबंधन के बीच नही आने चाहिये।

भूदृश्य (Landscape)

जैविक कृषि पर्यावरण के लिये निश्चित रुप से लाभकारी होनी चाहिये। पूरे क्षेत्र के उचित प्रबंधन एवं जैव विविधता के निर्वहन के लिये कुछ आवश्यकताऐं निम्नानुसार हैं।

1. दूर-दूर तक फैले घास के मैदान।
2. सभी क्षेत्रों का फसल चक्र के अंतर्गत होना और अधिक खाद न डालना।
3. चरागाह, घास के मैदान, फलों के बागान एवं वानस्पतिक बाड़ घेरा लगाना।
4. पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकी से समृध्द भूमि।
5. जैव विविधता से परिपूर्ण क्षेत्र।
6. जल निकासी, तालाब, झरने, पोखर, गड्ढे, डूब की जमीन इत्यादि।

प्रमाणीकरण कार्यक्रम के अंतर्गत यह सुनिश्चित किया जाना चाहिये कि प्रत्येक फार्म का कुछ भाग जैव विविधता के निर्वहन एवं प्रकृति संरक्षण के लिए सुरक्षित रखा जाय।

2- फसल उत्पादन

2-1- **फसलों एवं प्रजातियों का चयन** - सभी चयनित फसल प्रजातियों के बीज एवं कंद इत्यादि प्रमाणित जैविक कृषि उत्पाद होने चाहिये। चयनित प्रजातियाँ स्थानीय पर्यावरणीय अवस्थाओं के अनुकूल हों और कीट व बीमारी प्रतिरोधी हों। यदि प्रमाणित जैविक कृषि बीज व कंद इत्यादि उपलब्ध न हो तो बिना रसायन उपचार के अन्य बीज व कंद भी प्रयोग किये जा सकते है। परिवर्तित अनुवांशिकी वाले बीजों, कंदों, परागकण तथा ट्रांसजैनिक पौधों का प्रयोग वर्जित है।

2-2- **बदलाव समय की अवधि** - वार्षिक रुप से उगाये जाने वाले पौध उत्पादों के लिये बदलाव समय, उस विशिष्ट फसल की बुवाई से २४ महीने पूर्व शुरु होना चाहिये । अन्य लम्बी अवधि की फसलो एवं बागवानी पौधों के लिये बदलाव समय जैविक प्रबंधन शुरु करने की तिथि से ३६ महीने पूर्व से शुरु होना चाहिये । पूर्व में की जाने वाली खेती पद्धति एवं स्थानीय आवश्यकताओं के मद्देनजर प्रमाणीकरण संस्था इस अवधि को घटाने या बढाने की अनुशंसा कर सकती है।

2-3- **फसल उत्पादन में विविधता** - फसल उत्पादन में एवं उस क्षेत्र विशेष में पौध विविधता बनाये रखने के लिये यह जरुरी है कि विभिन्न लेग्यूम फसलों के फसल चक्र अपनायें जाँय और आस पास की अन्य खुली भूमि पर विभिन्न प्रकार की स्थानीय पौध प्रजातियाँ उगाई जाँय । इन प्रक्रियाओं से न केवल भूमि की स्वस्थता एवं उर्वरा शक्ति में सुधार होगा बल्कि विभिन्न कीट पंतगों, खर पतवार एवं बीमारियों के प्रकोप को भी नियंत्रित करने में मदद मिलेगी ।

2-4- **खाद प्रबंधन** - जैविक कृषि फार्म पर ही उत्पादित पौध एवं पशु अवशिष्ट का स्थान खाद प्रबंधन में सर्वोपरि है खाद प्रबंधन में जिन बातों पर विशेष ध्यान दिया जाना है उनमें प्रमुख हैं- पौध पोषणों के क्षरण को रोकना, भारी धातु अवयवों को न जमा होने देना तथा मृदा पी.एच. को मान्य स्तर पर बनाये रखना। जहाँ तक संभव हो सके उसी फार्म पर उत्पादित जैविक अवशेष खादों का ही प्रयोग करना चाहिये। दूसरे स्थान से लाये हुए जैविक खादों का प्रयोग केवल पूरक खादों के रुप में ही करना चाहिये। जैविक खादों के अधिक उपयोग से बचना चाहिये। मानव मल युक्त खाद का प्रयोग उन फसलों में जिनके उत्पादों का प्रयोग मानवों के लिये निश्चित हो में नहीं करना चाहिये। ऐसी खाद का प्रयोग जैविक पशुओं के आहार वाली फसलों में किया जा सकता है।

पोषणों की कमी की स्थिति में कुछ खनिज उत्पादों का पूरक खाद के रुप में प्रयोग किया जा सकता है। ध्यान रहे ये उत्पाद अपने प्राकृतिक रुप में ही होने चाहिये। ऐसे खनिज उत्पाद जिनमें भारी धातु अवशिष्ट होने की संभावना हो उनके प्रयोग से बचना चाहिये।

जैव उर्वरक या जीवाणु खाद (Biofertiliser) सभी फसलों व सभी पर्यावरणीय परिस्थितियों में सुरक्षित रुप से प्रयोग किये जा सकते है।

2-5 **खरपतवार, कीट, व बीमारी प्रबंधन एवं होरमोन्स का प्रयोग** - खरपतवार कीट व बीमारियों की रोकथाम विभिन्न कृषि तकनीकों जैसे उपयुक्त फसल चक्र, हरी खाद का प्रयोग, समन्वित एवं संतुलित मात्रा में खादों का प्रयोग, जल्दी बुवाई, सही ढंग से भूमि की तैयारी, मल्चिंग एवं विभिन्न कीटों के जीवन विकास चक्र में ब्यवधान इत्यादि के सम्मिलित प्रयोग से की जा सकती है।

स्थानीय रुप में वानस्पतिक एवं पशु स्त्रोतों से तैयार किये गये कीटनाशकों एवं सूक्ष्मजीव कीटनाशकों का प्रयोग किया जा सकता है। खरपतवार को जलाकर एवं कीट बीमारियों का विभिन्न भौतिक तरीकों से भी नियंत्रण किया जा सकता है। संश्लेषित रसायनों जैसे रासायनिक कीटनाशक, फफूँदीनाशक, खरपतवार नाशक, वृद्धि उत्प्रेरक हारमोन्स तथा रासायनिक रंगों (Dyes) का प्रयोग सर्वथा वर्जित है। परिवर्तित अनुवांशिकी के जीवों व उनके उत्पादों का प्रयोग भी वर्जित है।

2-6 **संदूषण** (Contamination) - जैविक कृषि प्रबंधन में पूरे प्रयास किये जाने चाहियें कि उत्पादन के किसी भी स्तर पर फार्म के अंदर एवं बाहर के उपादानों का किसी भी रुप में कोई मिश्रण न हो सके।

2-7 **भू एवं जल संरक्षण** - भू एवं जल संसाधनों का उपयोग सही एवं टिकाऊ ढंग से होना चाहिये तथा प्रयास किये जाने चाहिये कि उनके दोहन से किसी भी प्रकार का क्षरण, लवणीकरण, जल का अत्याधिक दोहन तथा भू जल में किसी भी प्रकार का प्रदूषण न हो सके। आग लगाकर जमीन साफ करने के तरीके को कम से कम प्रयोग करना चाहिये। जंगल काटकर खेती की जगह बनाना सर्वथा वर्जित प्रक्रिया है।

3- **शहद एवं अन्य वानस्पतिक उत्पादों को इकट्ठा करना** - प्राकृतिक जंगल व अन्य गैर कृषि भूमि से किये गये उत्पादों को जैविक कृषि उत्पाद के रुप में तभी प्रमाणित किया जा सकता है जब वे एक स्थायी एवं टिकाऊ प्राकृतिक वातावरण से इकट्ठा किये गये हों और उतनी ही मात्रा मे इकट्ठा किये गये हों जितनी उस प्राकृतिक अवस्था में बिना पर्यावरण को असंतुलित किये व बिना विभिन्न प्रजातियों की जीवन क्षमता को प्रभावित किये संभव हो। जिस स्थान से ये प्राकृतिक उत्पाद इकट्ठा किये गये हों वह स्थान अन्य कृषि भूमि, मानव बस्ती, प्रदूषण स्त्रोतों इत्यादि से उचित दूरी पर होना चाहिये और उसके आस पास के क्षेत्र में किसी भी प्रकार के प्रतिबंधित रसायन का प्रयोग नहीं होना चाहिये।

4- **खाद्य प्रसंस्करण एवं संचालन**

4-1 **सामान्य सिद्धान्त** - तोड़कर इकट्ठा करते समय, भंडारण में तथा प्रसंस्करण में इस बात का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये कि जैविक कृषि उत्पाद अन्य उत्पादों के साथ न मिल सकें प्रमाणीकरण कार्यक्रम के अंतर्गत वाँछित सफाई, (Decontamination) तथा सभी उपकरणों के निष्कीटन के लिये मानक निर्धारित कर प्रक्रिया तो नियमित किया जा सकता है। उपयुक्त तापमान पर भंडारण के अलावा निम्न विशिष्ट प्रक्रियाओं को भंडारण में प्रयोग किया जा सकता है।

नियंत्रित वातावरण, ठंडा करना, बर्फ जमाना, सुखाना तथा नमी नियंत्रण

4-2 **कीट नियंत्रण** - कीट प्रबंधन एवं कीट नियंत्रण के लिये प्राथमिकता के आधार पर निम्न उपाय किये जा सकते हैं।

- निवारक (Preventive) उपाय जैसे कीटों के जीवन चक्र में व्यवधान, उनके पलने व बढ़ने के स्थानों की समाप्ति तथा अच्छी सुविधाओं की उपलब्धता।
- यांत्रिक, भौतिक एवं जैविक नियंत्रण उपाय।
- मानकों के अंतर्गत स्वीकार्य कीटनाशकों का प्रयोग तथा
- कीट ट्रेप में अन्य पदार्थों का प्रयोग।

विकिरणों का प्रयोग वर्जित है। जैविक कृषि पदार्थों का प्रतिबंधित रसायनों के साथ सीधे या परोक्ष संपर्क बिलकुल नहीं होने देना चाहिये।

4-3 **संघटक, योगज एवं प्रसंस्करण सहायता** - प्रसंस्करण में उपयोग किये जाने वाले सभी अवयव (ingrediants) पूर्ण रुपेण कृषि मूल के एवं प्रमाणित जैविक कृषि उत्पाद होने चाहिये। एन्जाइम व अन्य सूक्ष्मजीव उत्पादों के वृद्वि माध्यम (medium) प्रमुख रुप से जैविक अवययों से बने होने चाहिये।

कुछ मामलों में जहाँ जैविक स्त्रोत के अवयय उपलब्ध न हों, वहाँ प्रमाणीकरण कार्यक्रम कुछ गैर - जैविक पदार्थो के उपयोग की अनुमति दे सकता है जिसका समय-समय पर पुनर्मूल्यांकन किया जाना जरुरी है। किसी भी उत्पाद में एक अवयव जैविक व गैर जैविक दोनों स्त्रोतों से

एक साथ प्रयोग नहीं करना चाहिये । खनिज तत्व, विटामिन और इसी प्रकार के अन्य अवयवों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। योगज (additives) तथा प्रसंस्करण सहायकों का प्रयोग सीमित होना चाहिये। ऐसे सूक्ष्मजीव उत्पाद एवं एन्जाइम जो कि आमतौर पर खाद्य प्रसंस्करण में उपयोग किये जाते हैं का प्रयोग किया जा सकता है परंतु परिवर्तित अनुवांशिकी के सूक्ष्म जीव व उनके उत्पादों का प्रयोग वर्जित है।

4-4 **प्रसंस्करण विधियाँ** - प्रसंस्करण विधियाँ प्रमुख रुप से याँत्रिक, भौतिक एवं जैविक विधियों पर इस प्रकार आधारित होनी चाहियें ताकि जैविक कृषि अवयवों की गुणवत्ता पूरी प्रसंस्करण विधि के दौरान बनी रह सके। कुछ स्वीकार्य विधियाँ है। याँत्रिक एवं भौतिक, जैविक, धुआँ (Smoking) उध्दरण (Extraction), अवक्षेपण (Precipitation) तथा छानना (Filteration).

उद्वरण (Extraction) कार्य केवल जल, इथेनोल, वानस्पतिक एवं पशु तेल, सिरका, कार्बन डाई आक्साइड, नाइट्रोजन, कार्बोक्साइलिक अम्ल जैसे पदार्थ जो कि आमतौर पर खाद्य ग्रेड के होने चाहिये के साथ किया जा सकता है।

5. **संवेष्टीकरण** (Packaging) . सभी संवेष्टीकरण (पैकेजिंग) पदार्थ अच्छी गुणवत्ता के और पर्यावरणीय दृष्टि से सुरक्षित होने चाहिये। अनावश्यक पैकेजिंग पदार्थ के उपयोग से बचना चाहिये। पुनर्प्रयोग किये जा सकने वाले पदार्थों का प्रयोग किया जाना अच्छा है। सभी पैकेजिंग पदार्थ जैव अपघटित होने चाहिये तथा जो भी पदार्थ उपयोग किया जाय वह खाद्य की गुणवत्ता को प्रभावित करने वाला नहीं होना चाहिये।

6. **नामांकन** (Labelling) **-** जब पूरी वाँछित प्रक्रियाऐं अपनाकर सभी मानक पूर्ण रुप में प्राप्त कर लिये जॉय तो उत्पाद को जैविक उत्पाद के रुप में बेचा जा सकता है। प्रमाणीकरण संस्थाओं द्वारा उत्पाद को प्रमाणित जैविक कृषि उत्पाद घोषित करने पर उत्पादों पर "India Organic" का लोगो लगाया जा सकता है।

7- **भंडारण एवं परिवहन** - भंडारण एवं परिवहन करते समय भी ध्यान रखना चाहिये कि जैविक कृषि उत्पाद, अन्य प्रकार के कृषि उत्पादों के साथ न मिल जायें और हमेशा अपनी एक अलग पहचान बनाये रखें। सभी जैविक कृषि पदार्थ किसी भी प्रतिबंधित रसायन के सीधे या परोक्ष रुप में कभी भी संपर्क में न आने पायें।

उत्पादक समूह प्रमाणीकरण प्रणाली

यह प्रणाली समूह के अंतर्गत आंतरिक गुणवत्ता प्रणाली पर आधारित है और उत्पादक समूहों, कृषक सहकारी समितियों, ठेके पर उत्पादन करने वालों तथा लधु प्रसंस्करण इकाइयों पर लागू होती है। इस प्रणाली के अंतर्गत सभी उत्पादकों को एक समान उत्पादन प्रणाली अपनानी होती है तथा उनके फार्म या इकाईयां पास-पास समान भौगोलिक क्षेत्र में होने चाहिये।

समूह का गठन

समूह का गठन विधिक रूप में मानक हो तथा संगठन का संविधान हो जिसमें पूर्ण संगठनात्मक विवरण व कार्यप्रणाली दर्शायी गयी हो।

आंतरिक गुणवत्ता प्रणाली (IQS)

समूह प्रमाणीकरण आंतरिक गुणवत्ता प्रणाली की संकल्पना पर आधारित है जिसके प्रमुख अवयव निम्नानुसार हैं:-

1- आंतरिक नियंत्रण प्रणाली की स्थापना
2- आंतरिक मानक
3- जोखिम मूल्यांकन

बाह्य निरीक्षण तथा प्रमाणीकरण के लिये अधिकृत संस्था का चयन किया जाता है जो समूह की आंतरिक गुणवत्ता प्रणाली, उत्पादन प्रलेख, कार्यकर्ताओं की योग्यता आंकलन के साथ-साथ कुछ फार्मों का निरीक्षण भी करेगी और पूरे समूह की प्रक्रिया को मानकों के अनुरूप पाये जाने पर प्रमाणीकरण प्रदान करेगी।

आंतरिक गुणवत्ता प्रणाली की स्थापना

उत्पादक समूह के आंतरिक गुणवत्ता प्रणाली स्थापना के लिये निम्नांकित न्यूनतम् आवश्यकताएं हैं।

1- आंतरिक नियंत्रण प्रणाली का विकास व स्थापना
2- उत्पादक समूह की पहचान व गठन
3- सदस्यों के बीच समूह प्रमाणीकरण प्रक्रिया के बारे में जागरूकता
4- आंतरिक नियंत्रण प्रणाली के क्रियान्वयन हेतु योग्य कर्मियों की पहचान
5- उत्पादन तथा आंतरिक गुणवत्ता नियंत्रण पर प्रशिक्षण
6- आंतरिक गुणवत्ता प्रणाली का लिखित मैनुअल तैयार करना
7- नीतियों तथा प्रक्रियाओं का क्रियान्वयन
8- सभी प्रलेखों का समय-समय पर मूल्यांकन, उनकी समींक्षा तथा उनका उन्न्यन

प्रणाली के परिचालक

आंतरिक गुणवत्ता प्रणाली के सफल संचालन के लिये निम्न कर्मियों की आवश्यकता होती है।

1- आंतरिक गुणवत्ता प्रणाली प्रबंधक
2- आंतरिक निरीक्षक
3- अनुमोदन प्रबंधक/समिति
4- प्रक्षेत्र अधिकारी

5- आदान क्रय व प्रबंधन अधिकारी
6- भंडार प्रभारी
7- प्रसंस्करण अधिकारी(प्रसंस्करण इकाई हेतु)

आंतरिक मानक

आंतरिक मानक राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम के मानकों के अनुरूप स्थानीय भाषा में तैयार किये जाने चाहिए। यदि किसान अशिक्षित है तो मानकों को चित्रों की मद्द से समझने योग्य रूप में तैयार किया जाना आवश्यक है।

हितों के बीच टकराव

आंतरिक गुणवत्ता प्रणाली से जुड़े सभी कर्मियों का स्वयं का कोई हित संपूर्ण कार्यक्रम से नहीं जुड़ा होना चाहिये। इसे सुनिश्चित करने के लिये प्रत्येक कर्मी को लिखित में इस बात की घोषणा करनी आवश्यक है।

आंतरिक नियंत्रण प्रणाली की स्थापन तथा प्रचालन

1- **सदस्यों का पंजीकरणः-** समूह के सभी सदस्यों को एक इकाई के रूप में पंजीकृत किया जाना
2- **उत्पादन क्रिया का प्रलेखन** - उत्पादक समूह के प्रत्येक सदस्य को स्थानीय भाषा में रखे जाने वाले प्रलेखों की प्रति दी जायेगी। प्रमुख प्रलेखों का विवरण निम्नानुसार हैः-
   (क) आंतरिक गुणवत्ता मैनुअल की प्रति
   (ख) आंतरिक मानक
   (ग) राष्ट्रीय जैविक उत्पादन कार्यक्रम के मानकों का प्रलेखन
   (घ) उत्पादन इकाई की परिभाषा
   (ड.) फार्म प्रवेश पत्र, प्रतिबंधित आदानों के अंतिम प्रयोग की जानकारी के साथ
   (छ) प्रत्येक सदस्य का करार पत्र
   (ज) वार्षिक निरीक्षण जॉच सूची
   (झ) प्रशिक्षण कार्यक्रमों तथा सलाह सेवाओं का विवरण

आंतरिक निरीक्षण

आंतरिक निरीक्षण समूह के प्रत्येक सदस्य तथा फार्म का एक वर्ष में कम से कम दो बार आंतरिक निरीक्षण किया जायेगा तथा निरीक्षण प्रतिवेदन को प्रलेखित किया जायेगा, निरीक्षण, समूह के सदस्य या उसके प्रतिनिधि की उपस्थिति में होना चाहिये तथा वर्ष में कम से कम एक बार पूरे फार्म, भंडार सुविधाओं, उपकरणों, पशुओं इत्यादि सबका निरीक्षण किया जाना चाहिये। अनुपालना न होने अथवा मानकों के उल्लंघन की अवस्था में आंतरिक गुणवत्ता प्रबंधक को जानकारी देनी चाहिये और ऐसे सदस्य व फार्म को समूह से अलग करना चाहिये।

बाह्य निरीक्षण

प्रमाणीकरण संस्था निरीक्षण के समय कुछ फार्मों व सदस्यों के खेतों का फिर से निरीक्षण कर मानकों की अनुपालना सुनिश्चित करेंगे। निरीक्षण योजना का प्रारूप निरीक्षक की जोखिम संबंधी संकल्पना पर आधारित होगा।

उत्पादन अनुमान

फसल कटाई से पूर्व प्रत्येक सदस्य के प्रत्येक फार्म तथा प्रत्येक फसल के उत्पादन का अनुमान लगाकर उसका फार्म डायरी में प्रलेखन किया जाना चाहिये और कटाई के बाद वास्तविक उत्पादन के साथ मिलान किया जाना चाहिये। बिक्री की गई मात्रा का भी अनुमानित उत्पादन के साथ मिलान जरूरी प्रक्रिया है।

पूर्ण प्रमाणीकरण प्रक्रिया संक्षेप में

1- समूह या एकल उत्पादक द्वारा प्रमाणीकरण संस्था को आवेदन
2- प्रमाणीकरण संस्था द्वारा आवेदन की जॉंच। आवश्यकता पड़ने पर और अधिक जानकारी व विवरण की मॉंग
3- कुल प्रमाणीकरण लागत की उत्पादक को जानकारी व उसकी स्वीकृति
4- उत्पादक द्वारा लागत स्वीकारिता तथा करार पर हस्ताक्षर
5- प्रमाणीकरण संस्था द्वारा उत्पादन प्रक्रिया की वार्षिक योजना की मॉंग तथा उत्पादक द्वारा प्रस्तुत किये जाने पर उसका अनुमोदन
6- प्रमाणीकरण संस्था द्वारा मानकों व प्रलेखों के प्रारूप दिया जाना
7- कुल लागत के ५० प्रतिशत का बिल उत्पादक को भेजना
8- उत्पादक द्वारा शुल्क जमा करना
9- निरीक्षण कार्यक्रम का खाका तैयार करना
10- निरीक्षण
11- आवश्यकता होने पर मिट्टी, पौधों व उत्पादों के नमूनों की प्रयोगशाला जॉंच
12- निरीक्षण प्रतिवेदन संस्था को सौंपना
13- प्रमाणीकरण संस्था द्वारा बाकी बचे भुगतान की मॉंग
14- उत्पादक द्वारा पूर्ण शुल्क का भुगतान
15- प्रमााणीकरण प्रबंधक या समिति द्वारा प्रमाणीकरण जारी
16- उत्पादक द्वारा प्रमाणीकृत जैविक उत्पाद का अधिकारिक मार्क के साथ विपणन।

संलग्नक - १

जैविक खेती में पोषण प्रबंधन एवं मृदा सुधार हेतु उपयोग किये जाने वाले पदार्थों की स्वीकार्यता

उपादान	स्वीकार्यता की स्थिति
पौध एवं जंतु स्त्रोतों से प्राप्त उपादान	
जैविक कृषि फार्म पर उत्पादित	
• गोबर खाद, मुर्गी खाद, पशु मल एवं मूत्र	अनुमत
• फसल अवशिष्ट तथा हरी खाद	अनुमत
• भूसा एवं अन्य मल्च	अनुमत
• कम्पोस्ट तथा वर्मी कम्पोस्ट	अनुमत
अन्य स्त्रोतों से प्राप्त	
• लहू, मांस, हड्डी, पंख से प्राप्त खाद (बिना रसायनों के)	सीमित
• पौध एवं जंतु अवशेषों एवं पशु मल से प्राप्त कम्पोस्ट	सीमित
• गोबर खाद, मुर्गी खाद, पशु मल एवं मूत्र	सीमित
• मछली खाद व अन्य मछली उत्पाद (बिना रसायनों के)	सीमित
• गुआनो	सीमित
• मानव मल	पूर्ण निषेध
• लकडी की छाल, बुरादा, टुकडे, राख तथा कोयला	सीमित
• भूसा, जन्तु कोयला, कम्पोस्ट, मशरुम अवशिष्ट तथा वर्मीक्यूलेट पदार्थ	सीमित
• घरों से प्राप्त कचरा एवं उसका कम्पोस्ट	सीमित
• पौध अवशिष्ट से प्राप्त कम्पोस्ट	सीमित
• समुद्री खरपतवार एवं उनके एत्पाद	सीमित
औद्योगिक उप उत्पाद ;इलचतवकनबजे वि पदकनेजतपमेद्ध	
• खाद्य एवं कपडा उद्योग के ऐसे उप उत्पाद जो पौध व जंतु स्त्रोतों से प्राप्त हों, जैवअपधटित हों तथा रसायनों से मुक्त हों	सीमित
• पाम तेल, नारियल, कोको उद्योग के उप उत्पाद तथा अवशिष्ट	सीमित
• जैविक खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों के उप उत्पाद	सीमित
• मशरुम तथा क्लोरेला के अरक, एस्परजिलस के सड़न उप उत्पाद तथा प्राकृतिक अम्ल	सीमित
खनिज स्त्रोतों से प्राप्त	
• बेसिक स्लेग	सीमित
• केल्शियम एवं मैग्निशियम खनिज	सीमित
• चूना, चूना पत्थर तथा जिप्सम	अनुमत
• कैल्सिकृत समुद्री खरपतवार	अनुमत
• केल्शियम क्लोराइड	अनुमत
• ऐसा खनिज पोटाश जिसमें क्लोराइड की मात्रा बहुत कम हो	सीमित
• प्राकृतिक रॉक फास्फेट	सीमित
• सूक्ष्म पोषक तत्व	अनुमत
• गंधक	अनुमत
• क्ले (बैन्टोनाइट, परलाइट, जियोलाइट)	अनुमत
सूक्ष्मजीव स्त्रोतों से प्राप्त	
• जीवाणु उत्पाद (जैसे जैव उर्वरक)	अनुमत
• जैव सक्रिय उत्पाद	अनुमत
• पौध उत्पाद तथा वानस्पतिक अरक	अनुमत

संलग्नक - २

जैविक खेती में नाशीजीव प्रबंधन हेतु उपयोग किये जाने वाले पदार्थों की स्वीकार्यता

उपादान	स्वीकार्यता की स्थिति
पौध एवं जंतु स्त्रोतों से प्राप्त उपादान	
• पौध आधारित प्रतिकर्षी (जैसे नीम उत्पाद)	अनुमत
• शैवाल उत्पाद (जैसे जिलेटिन)	अनुमत
• केसीन	अनुमत
• मशरुम तथा क्लोरेला के अरक तथा एस्परजिलस के सडन उप उत्पाद	अनुमत
• प्रोपोलिस	सीमित
• मधुमक्खी मोम, प्राकृतिक अम्ल, क्सूआसिया	अनुमत
• डेरिस इलिपटिका, लोन्चोकारपस या टेफरोसिया पौधे से प्राप्त रोटेनोन	सीमित
• तम्बाकू का काढ़ा (शुद्ध निकोटीन का प्रयोग निषेध)	सीमित
• रायेनिया पौधे के उत्पाद	सीमित
खनिज स्त्रोतों से प्राप्त	
• चूने व सोडे के क्लोराइड	सीमित
• बरगन्डी घोल	सीमित
• क्ले (बैन्टोनाइट, परलाइट, वर्मीक्यूलाइट, जियोलाइट)	अनुमत
• तांबे के लवण/ अकार्बनिक लवण (बोर्डो मिक्श्चर, कॉपर हाइड्रोक्लोराइड, कॉपर आक्सीक्लोराइड)	पूर्ण निषेध
• चूना	सीमित
• डाइएटम मिट्टी	अनुमत
• हल्के खनिज तेल	सीमित
• पोटाश का परमैग्नेट	सीमित
कीट स्त्रोतों से प्राप्त	
• परजीवी एवं परभक्षी मित्र कीटों का प्रयोग	सीमित
• बन्ध्याकृत कीटों का प्रयोग	सीमित
• नर कीटों का बन्ध्याकरण	पूर्ण निषेध
जैविक जीवनाशी प्रबंधन में सूक्ष्मजीवों का प्रयोग	
• विषाणु, जीवाणु एवं फफूंद आधारित नाशीजीव नाशी	सीमित
अन्य	
• कार्बन डाइ आक्साइड व नत्रजन गैस	अनुमत
• कोमल साबुन, सोडा तथा सल्फर डाइ आक्साइड	अनुमत
• होम्योपैथिक व आर्युवैदिक उत्पाद	अनुमत
• वानस्पतिक एवं जैव सक्रिय उत्पाद	अनुमत
• समुद्री नमक व खारा पानी	अनुमत
• इथाइल अल्कोहल	पूर्ण निषेध
ट्रैप, बाधायें व प्रतिकर्षी	
• भौतिक उपाय (जैसे क्रोमेटिक ट्रैप व यांत्रिक ट्रैप)	अनुमत
• मल्च व जाल का उपयोग	अनुमत
• फिरेमोन्स - केवल ट्रैप व डिस्पेन्सर में	अनुमत